

UNIVERSAL  
LIBRARY

**OU\_182479**

UNIVERSAL  
LIBRARY











॥ श्रीः ॥



❖ कबीर सागर । ❖

तृतीय खण्ड ।

जिसमें

अम्बुसागर, विवेकसागर

और

सर्वज्ञसागर संयुक्त है ।



भारतपथिक कबीरपंथी—

स्वामी श्रीयुगलानन्दद्वारा संशोधित ।



स्वामिराज श्रीकृष्णदास,

अध्यक्ष—“श्रीवेङ्कटेश्वर” स्टीम-प्रेस,

❖ बम्बई ❖

सं० १९९१, श० १८५६.

सत्य नाम ।



श्रीकबीर साहिब ।

मुद्रक और प्रकाशक—

खेमराज श्रीकृष्णदास,

अध्यक्ष—“श्रीवेङ्कटेश्वर” स्टीम-प्रेस, बम्बई.

पुनर्मुद्रणादि सर्वाधिकार “श्रीवेङ्कटेश्वर” यन्त्रालयाध्यक्षाधीन है ।

# कबीरसागर तृतीय भागकी विषयानुक्रमिका ।



जिसमें

अम्बुसागर पृष्ठ १ से पृष्ठ ६७ तक है ।

विवेकसागर पृष्ठ ६८ से पृष्ठ १२६ तक है ।

और

सर्वज्ञान पृष्ठ १३७ से पृष्ठ १४७ तक है ।

तीनोंकी अनुक्रमणिका अलग नीचे देते हैं ।

## अम्बुसागरकी अनुक्रमणिका ।

| विषय.                                   | पृष्ठ. |
|-----------------------------------------|--------|
| अघासुर युगकी कथा ...                    | ... २  |
| बलभद्र युगकी कथा ...                    | ... ३  |
| द्वन्द्वर युगकी कथा ( जलरंगबोध ) ...    | ... ६  |
| पुरवन युगकी कथा ( कुष्टम पक्षीबोध ) ... | ... ९  |
| अनुमान युगकी कथा ( आद्यालीला ) ...      | ... १५ |
| धीर्यमाल युगकी कथा ...                  | ... २० |
| तारण युग कथा ( राजा बंगबोध ) ...        | ... २३ |
| अखिल युग कथा ( धनुष मुनिबोध ) ...       | ... २६ |
| विश्वायुग कथा ( देवीबोध ) ...           | ... ४० |
| अक्षय तरुण युगकथा ( कूर्मबोध ) ...      | ... ४४ |
| चौदह यमका नाम ...                       | ... ४७ |
| नन्दी युगकथा ( गुप्तमुनिबोध ) ...       | ... ४९ |
| हिडोल युगकथा ...                        | ... ५३ |
| कंकवत युगकथा ...                        | ... ५५ |
| चारों युगकथा ...                        | ... ५८ |

### विवेक सागरकी अनुक्रमणिका ।

|                                     |        |
|-------------------------------------|--------|
| ज्ञानमहातम ...                      | ... ६८ |
| मोहराजाकावर्णन (मोहकी स्थिति)... ६९ |        |
| मोहके मुत्ताहिव ...                 | ... ७० |
| कामप्रताप वर्णन ...                 | ... ११ |
| क्रोधप्रताप वर्णन ...               | ... ७२ |
| लोकप्रताप वर्णन ...                 | ... ७४ |
| गर्वका कर्तृत्व वर्णन ...           | ... ७६ |
| विवेकदल वर्णन ...                   | ... ७८ |

| विषय.                        | पृष्ठ. |
|------------------------------|--------|
| विवेक स्तुति ...             | ... ७८ |
| विवेक स्थिति ...             | ... ११ |
| विवेककी सेना ...             | ... ११ |
| विवेक और मोहकी छेड़छाड़ ...  | ... ८० |
| विवेक और मोह युद्ध आरम्भ ... | ... ११ |
| काम और ज्ञानका युद्ध ...     | ... ११ |
| क्रोध और क्षमाका युद्ध ...   | ... ८२ |
| लोभ और सन्तोषका युद्ध ...    | ... ८४ |

### मोह और विवेककी कथाकी

#### अनुक्रमणिका ।

|                         |        |
|-------------------------|--------|
| धर्मदासजीका प्रश्न ...  | ... ८८ |
| कबीरसाहबका उत्तर ...    | ... ८९ |
| प्रवृत्ति वंश वर्णन ... | ... ९० |
| मोह परिवार ...          | ... ९३ |
| काम परिवार ...          | ... ११ |
| लोभ परिवार ...          | ... ९३ |
| दम्भ परिवार ...         | ... ११ |
| गर्व परिवार ...         | ... ११ |
| मद परिवार ...           | ... ११ |
| अधर्म परिवार ...        | ... ११ |
| निवृत्ति वंशवर्णन ...   | ... ९५ |
| विवेक परिवार ...        | ... ९६ |
| विचार परिवार ...        | ... ११ |
| धीरज परिवार ...         | ... ११ |

| विषय.                                   | पृष्ठ.  |
|-----------------------------------------|---------|
| सन्तोष परिवार ...                       | ... ९६  |
| सत्य परिवार ...                         | ... "   |
| शील परिवार ...                          | ... ९७  |
| धर्म परिवार ...                         | ... "   |
| वैराग्य परिवार ...                      | ... "   |
| प्रवृत्तिकी ईर्ष्या और युद्धका मूल ...  | ...     |
| विवेक का मंत्रियोंसे मन्त्र विचारना ... | १००     |
| लडाईकी तय्यारी ...                      | ... १०१ |
| युद्ध वर्णन ...                         | ... १०५ |
| काम और सुमतिका युद्ध ...                | ... १०६ |
| क्रोध और क्षमाका युद्ध ...              | ... ११४ |
| मोह और विवेककी सेनाका तुमुल युद्ध       |         |
| वर्णन. अपने अपने जोड़से लडकर            |         |
| विवेककी सेनाका मोहकी सेनाको             |         |
| हराना ...                               | ... १२१ |
| प्रवृत्तिका मनके राजा निकट जाना और      |         |
| मनका शोक करना ...                       | ... १२३ |
| निवृत्तिका अपनी सखियोंको मन राजाके      |         |
| पास भेजना और प्रवृत्तिका क्रोध          |         |
| और पराजय ...                            | ... १२४ |
| मन राजाका निवृत्ति रानीपर प्रसन्न       |         |
| होकर उसके साथ रहना ...                  | ... १२६ |
| इति ।                                   |         |

| विषय.                                 | पृष्ठ.  |
|---------------------------------------|---------|
| सर्वज्ञ सागरकी अनुक्रमणिका ।          |         |
| धर्मदासजीका सर्व ज्ञानका सार पृष्ठना  | १२७     |
| कबीर साहबका चार ज्ञान कहना            | १२८     |
| धर्मदाससाहबका आदि अन्त और मध्यकी      |         |
| गति पृष्ठना ...                       | ... "   |
| आदिका वर्णन ...                       | ... १२९ |
| कबीरसाहबके ज्ञान विषय धर्मदास         |         |
| साहबका शंका करना ...                  | ...     |
| चार वेदके भेद-बाहर हैं ...            | ...     |
| आदि अन्तकी उत्पत्तिका प्रश्नोत्तर ... | १३०     |
| सत्य युगका वर्णन ...                  | ... "   |
| त्रेतायुगका वर्णन ...                 | ... १३१ |
| द्वापरयुगका वर्णन ...                 | ... "   |
| कलियुगका वर्णन ...                    | ... १३२ |
| धर्मदासजीका भयमान होना ...            | १३३     |
| कबीरसाहबका सब भेद कहनेकी प्रतिज्ञा    |         |
| करना और सृष्टि उत्पत्ति वर्णन ...     | ...     |
| सात सन्धि विषयक प्रश्न ...            | १३६     |
| सात सन्धिकी वर्णन ...                 | ... १३७ |
| चौरासी लक्षका प्राकट्य ...            | १३९     |
| ज्ञान खण्ड वर्णन ...                  | ...     |
| इति कबीरसागर तृतीय भागकी              |         |
| अनुक्रमणिका ।                         |         |

इति अनुक्रमणिका समाप्ता ।





सत्यसुकृत, आदि अदली, अजर, अचिन्त, पुरुष,  
मुनीन्द्र, करुणामय, कवीर, सुरती योग संतायन,  
धनी, धर्मदास, चूरामणिनाम, सुदर्शननाम, कु-  
लपतिनाम, प्रमोध, गुरुबालापुरी, केवल नाम,  
अमोल नाम, सुरतिसनेही नाम, हक्क नाम,  
पाकनाम, प्रगट नाम, धीरज नाम,  
उग्र नाम, दया नामकी दया  
वंशव्यालीसकी दया ।

अथ अम्बुसागर प्रारम्भः ।

अथ प्रथमस्तरंगः ।

अघासुर युगकी कथा वर्णन ।

मंगलाचरण ।

छन्द-आदि ब्रह्म अनादि अकल अभेद अवर्न आगरं ॥  
सर्व व्यापक आर्य वीरज आनन्द धामी सागरं ॥  
तुव चरण रवि परकाश अविचल सकल कलि कर्मज हरे ॥  
अधम जीव अघोर खल जे विना श्रम भव जल तरे ॥

## धर्मदास वचन ।

सोरठा-धर्मदास शिर नाय, बिनय कीन्ह कर जोरिके ॥  
 तुम बहियां जिव आय, करहु अनुग्रह दासको ॥  
 तुव चरणन बलिहार, युग लेखा मोहिं भाषिये ॥  
 जेहि विधि हंस उबार, मर्दन कीन्हो काल को ॥  
 सोरठा-हंसराज कहु कन्त, जीव उबारेउ पन्थ जिमि ॥  
 अम्बू सागर ग्रन्थ, सो वर्णन प्रभु कीजिये ॥

## सतगुरु वचन-चौपाई ।

धर्मदास पुरुष गुण गाऊं । युग युग लेखाज्ञान सुनाऊं ॥  
 तुम बूझ्यो जीवन के काजा । सत्य सत्य भाषूं सब साजा ॥  
 आदि पुरुष सुकृत जब कहेऊं । दाया कीन्ह पान तब दयऊं ॥  
 जबै पुरुष आज्ञा मोहिं कीन्हा । होय सुकृत पुहुमी पग दीन्हा ॥  
 आदि अमर मन अम्बू सागर । पावे पान हंस हो आगर ॥  
 प्रथम अघासुर युग विस्तारा । तबै सुकृत पुहुमी पग धारा ॥  
 श्वेत स्वरूप कीन्ह सठिहारा । सत शब्दन भाषें संसारा ॥  
 गण गंधर्व मुनि भेद न पावे । नर देही की कौन चलावे ॥  
 पाये पान सुकृत के हाथा । सो सठिहार लीन्ह जियसाथा ॥  
 युग युग देह धरत हम आये । जो चीन्हा तेहि लोक पठाये ॥  
 घर के दूत खेद हम डारा । सब जीवन कहँ पार उतारा ॥  
 अभय सेतु पान है भाई । जो पावे अनभय हो जाई ॥  
 साधू बहुत भये संसारा । आदि अंत कोइ नाहिं बिचारा ॥  
 आदि आदि सब करें बखानी । आदि अंतकी खबर न जानी ॥  
 सबही कहें पार भये भाई । पार केरि गति काहु न पाई ॥  
 नाहिन साख शब्द में होई । ज्ञान नहीं पोथी में सोई ॥  
 नाहीं वेद पुराण बखाने । योगी जती नहीं कोइ माने ॥

शब्द खोज कीजो नर प्राणी । बिन सत शब्द बांधि यम तानी ॥  
 आगे अमिय लोक इक आही । तहां शब्द बैठो अति छाही ॥  
 ताका ज्ञान करो हो साधू । सहजहिं सुरति लगाव समाधू ॥  
 सहजहि युग अरु सहज प्रमाणा । पावे जीव होय निरवाणा ॥  
 सहज पाय जिव सहजहि तरई । काया अमर सहज सों करई ॥  
 सहजहि शब्द सहज गहिराखा । सहजहि दरशपुरुष अभिलाखा ॥  
 सहजहि अंक गुप्त है भाई । पावे जीव हंस होय जाई ॥  
 सहजहि पुरुष जगामग ज्योति । पाप पुण्य तेहि घर नहिं होती ॥  
 युग अघासुर जीवन लायी । एक करोड़ हंस मुक्तायी ॥  
 धर्मदास मैं सत ही भाखूं । पुरुष नाम तोहि गोय न राखूं ॥  
 छन्द-आदि अम्बु अमर अदली अगम निगम अपार हो ॥  
 आनंद आर्य अचिन्त अविगत अकह अविचल सार हो ॥  
 कामोद कंकवत छत्रधारी मुक्ति दाता गाइये ॥  
 अगाध पुरुषोत्तम जु कहिये अरु मुकुट मणि कहैं ध्याइये ॥  
 सोरठा-पुरुष नाम अपार, धर्मनि एतक वर्णैऊ ॥  
 कहेउ वीश निरधार, तुम सुनियो चित लायकै ॥

इति अम्बुसागरे अघासुरयुगकथावर्णनो नाम प्रथमस्तरंगः ।

## अथ द्वितीयस्तरंगः ।

बलभद्र युग कथावर्णन ।

धर्मदास वचन-चौपाई ।

धर्मदास बिनये प्रभुराई । दूजे युग मोहिं कथा सुनाई ॥  
 तुच्छ बुद्धि हम तुम मति आगर । हंसराज भाषो प्रभु नागर ॥

सतगुरु वचन-चौपाई ।

धर्मदास बूझो मतिवाना । भाषू शब्द सत्य सहिदाना ॥

युग बलभद्र दूसरा भाखों । तुमसन गोय कछू नहिं राखों ॥  
 लोक वेद जिन दूर वहाई । सोइ जीव सु पुरुष मन भाई ॥  
 आदि नाम के सुमिरन पावा । एक चित्त मन सुरति लगावा ॥  
 चौदह लाख जीव पठवाई । सत्य लोक महँ बैठे जाई ॥  
 तिन देखा इक हंस अनूपा । षोडश रवि तहँ देख स्वरूपा ॥  
 तब हंसा ते पृछन लियऊ । केहि आधार यहां तुम रहेऊ ॥

लोकके हंस वचन-चौपाई ।

कहे हंस हंसनि सों बाता । सत्त पुरुष निज अहहिं विधाता ॥  
 उनका शब्द गहा चितलायी । तब पृथ्वी महँ जन्म धरायी ॥  
 नाम पान पाँजी मोहिं दीन्हा । यहि आधार लोक हम चीन्हा ॥  
 अब मैं तुम सन बूझू भाई । अपनी बात कहो समझाई ॥

दोहा-हम तुम कहँ भल बूझहीं, कहो हंस समझाय ।

कौन डोर चढि आयऊ, सो मोहीं देहु बताय ॥

हंस वचन-चौपाई ।

कहे हंस हंसन सों बाता । सत्य शब्द निज आहु विधाता ॥  
 अजवन बीरा दीन्हा हाथा । ताहि डोर आये हम साथ ॥  
 आदि पुरुष है सिरजन हारा । एकहि मूल एक है डारा ॥  
 हम तुम एक पुरुष के कीन्हे । अब काहे तुम अन्तर दीन्हे ॥  
 हम सन भेंट करो तुम आयी । अब काहे को गहर लगायी ॥  
 सकल हंस के पुरुष है राजा । युगनयुगन जिन जीव निवाजा ॥  
 निर्गुण पुरुष आहिं निर्वाणा । निर्गुण नाम पान सहिदाना ॥  
 इतना वचन हंस समझायी । तबही हंस मिले उठि धायी ॥  
 युगल अंक भर कीन्ह मिलापू । भयो हर्ष तब मिटचो सन्तापू ॥  
 तबै हंस बैठे रुचि आसन । आज्ञा मांगि पाय अनुशासन ॥  
 इतनी कथा भई तहँ भाई । चार लाख युग गये बिताई ॥

तेहि क्षण चार अंश चलि आये । आभा ताही बरणि नहिं जाये ॥  
कोटि भानु शोभा अति आगर । हंसा देखि चकित भयो नागर ॥  
बूझे हंस हंस सुन बाता । इनकर नाम कहो मोहिं भ्राता ॥

लोकके हंस वचन ।

कहे हंस हंसा सुन भाई । एतो हंस पुरुष के आई ॥  
हंसन केर अहहि सुखदाई । जगमहँ प्रगट होहि जिव लाई ॥  
लोकै माहिं पुरुष के अंशा । भव महँ जाइ कहावे वंशा ॥  
सोइ कहत व्यालिश अंश अपारा । देइ पान हंसा निस्तारा ॥  
अकह अंश सत्ताइस वंशा । नाम देइ यम मेटहि संशा ॥  
षोडश जो हंस अंग बखानी । नाम चतुर्भुज सत की बानी ॥  
राम रसाइन ऐसहि साता । सह तेजी जग नाम सुहाता ॥  
ये चारों गुरु जग कढिहारा । इन की बांह जगत हो पारा ॥

हंस वचन—चौपाई ।

यह सुन हंस बहुत हर्षाना । जस पंकज बिहसे लख भाना ॥  
कर दंडवत चरण हिय लाई । चारों गुरुके टेके पाई ॥  
भल साहिब मोहिं दरशन दीन्हा । पतित जीव आपन करलीन्हा ॥  
हम साहिब चीन्हा परतापा । जन्म अनन्त मिटा सन्तापा ॥  
छंद—दरश दे आपनो कियो मम जन्म कीन्ह कृतारथा ॥  
हंस नायक तुम धनी हो मोहिं दर्श की शारधा ॥  
अमर पुरुष के दरश कारण चित्त मम अभिलाष है ॥  
स्वाति चातक जिमि रटत तिमि तृषा अति अकुलात है ॥  
सोरठा—दर्श करायो मोहिं, युग अनन्त बिछुरत भये ॥  
विनय करों प्रभु तोहिं, बेगि बिलम्ब न कीजिये ॥

चारु गुरु वचन ।

छन्द-पुरुष आज्ञा लाय ततक्षण हंस जाय मिलाइया ॥  
 चरण कण्ठ लगाय हियमें हंस सो भर पाइया ॥  
 अमिय फल हंसन दिये भये रूप षोडश भानु हो ॥  
 द्वीप द्वीपन कर कुतूहल पुष्प सज्या वान हो ॥  
 सोरठा-हंसहि अनन्द, रजनी गत जिमि दिवस हो ॥  
 कोक शोक मिट द्रन्द, धर्मदास इमि हंस सो ॥  
 इति श्रीअम्बुसागरे बलभद्रयुगकथावर्णनो नाम द्वितीयस्तरंगः ।

## अथ तृतीयस्तरंगः ।

द्रन्दर युग कथावर्णन ।

धर्मदास वचन-चौपाई ।

धर्मदास आनँद मन कीन्हा । गद्गदवाणी अति प्रिय चीन्हा ॥  
 और कथा कह बन्दी छोरा । हंस उबाग्न कगे निहोरा ॥  
 सतगुरु वचन ।

सत गुरु कहै सुनो धर्मदासू । सत्य शब्द भाषूं परकासू ॥  
 जग द्रन्दर जब प्रगट्यो आई । पुरुष अवाज जीव बरलाई ॥  
 चीन्हेउ मोहिं कीन्ह तेहि काजा । दीन्हेउ नाम काल उठभाजा ॥  
 दोय हजार बोध जिव आये । नाम पाय तेहि लोक पठाये ॥  
 युगहु अखिल दशलाख बखाना । सतसत भाषूं करहु प्रमाणा ॥  
 पाय पान कीन्हा परकाशा । अगम निगम बैठे सुखवासा ॥  
 शुभकृत सेतु हंस ले जाई । अमर देह हंसा तहैं पाई ॥  
 दीप कथा भाषूं सहिदानी । बैठे योग सतायन ज्ञानी ॥  
 सत्य अंश उन करहै नाऊ । युग युग पृथ्वी जीव मुक्ताऊ ॥  
 उनते बोध जीव का होयी । तिनते काल रहे मुख गोयी ॥

श्रुति उत्पन्न पुरुष जब लीन्हा । श्वास शब्दतें सबकुछ कीन्हा ॥  
 अछप द्वीप इक गुप्त रहाई । तहँ जल रंग अंश बैठाई ॥  
 तिनके बहुत जीव हैं साथी । जीवन माथ देहिं वे हाथा ॥  
 श्वेत नाम द्वै चँवर डुलायी । कोटि हंस तहँ माथ नवायी ॥  
 लगी तहां मणिन की पाँती । झमक झमक जहँ बरसै स्वाती ॥  
 नवो रत्न मन्दिर महि लागे । हंसराज निद्रा महँ पागे ॥  
 युग असंख्य सहजहिचलिजाई । तब जल रंग जाग उठ भाई ॥  
 शठिहारन सों बूझहि बाता । मोसन सत्य कहो विख्याता ॥  
 हम निद्रा महँ रहे मुरझाई । कौन अंश धरणी महँ जाई ॥

शठिहार वचन-चौपाई ।

तब शठिहारन माथ नवाये । दोउ करजोर बिनय उठलाये ॥  
 युग द्वन्दर साहिब पगधारा । नाम कबीर हंस रखवारा ॥  
 जीवन पान दीन्ह जग आई । दोय हजार हंस मुकताई ॥  
 या मारग पहुँचे तब आई । खबर तुम्हारि कीन बहुताई ॥  
 तब तुम निद्रा लागी स्वामी । हंसन लेइगये सुख धामी ॥

जलरंग वचन ।

कह जलरंग सुनो शठिहारा । पुरुष दीन मोहीं मग भारा ॥  
 सबकर उतपन कर भल जाना । हमही सत्य सुकृत है पाना ॥  
 साधु महन्त मोहिं पहुँ आई । संग हमार लेय घर जाई ॥  
 हम आज्ञा युगयुग चलिआवा । मो बिन यहवां जीको पावा ॥  
 हम आज्ञा काहे नहिं लीन्हा । कैसे कबीर पुहुमि पग दीन्हा ॥  
 अब कबीर यहवां नहिं आये । कैसे जग महँ पान चलाये ॥  
 द्वीप एक माणिकपुर नाऊ । आदि पुरुष तहँ आप रहाऊ ॥  
 रूप रेख तिनके कुछ नाहीं । वर्णत बचन बनत नहिं ताहीं ॥  
 हीरा नखत सु माथे राजे । अनहद ध्वनितहँ अतिप्रियगाजे ॥

कोटिन रवि इक रोम लजाई । अमिय स्वरूप हंस मनभाई ॥  
 अविगत अचल अभयपद देवा । षोडश सुत तेहि लावहि सेवा ॥  
 नाम सुपान पुरुष कर सारा । पावत जीव होहिं भव पारा ॥  
 सत्य शब्द का करे निवेदा । ताको मिले अभय पद भेदा ॥  
 सत्य शब्द ले बोले भाई । सत्य शब्द ले बैठे जाई ॥  
 सत्य खोज सतही ले रहई । सत्य शब्द तेहि काल न दहई ॥  
 जाके हियमें सत्य प्रकाशू । ताकहँ लोक होय सुख बामू ॥

दोहा—लोक लोक सबही कहें, कौन दिशा है लोक ॥

लोक लाज कुल तोरही, ताहि काल नहिं गोक ॥

चौपाई ।

उत्तर दिशा लोक है भाई । अगम पुरुष जहँ आप रहाई ॥  
 ताहि नाम पावे परमाना । कोटिन मध्य हंस कोइ जाना ॥  
 सतगुरु मिले जेहि देहि लखायी । सुरति निरन्तर ध्यान बतायी ॥  
 मकर तार तहँ लागी डोगी । पहुँचे हंस नाम की सोरी ॥  
 ताहि लोक के नाम अपारा । षोडश नाम ताहि अनुसार ॥  
 छंद—अजर अमर अपार अस्थिर अकह माणिक पुर अहै ॥

आनन्द कन्द विशाल निर्मलपुष्प दीप बिगज है ॥

सत सुख सागर अभय पद रहत लोक मनोहरं ॥

सन्तोष षोडश नाम संज्ञा लोक वर्णन को करं ॥

सोरठा—ऐसे पुरुष अपार, तिन आज्ञा हम पाइये ॥

बैठि पताल मैझार, सन्धि दिखावन तब गये ॥

इति श्रीअम्बुसागरे द्वन्द्वयुगकथावर्णनो नाम तृतीयस्तरंगः ।

## अथ चतुर्थस्तरंगः ।

पुरवन युगकी कथा ।

चौपाई ।

सुनत धर्म मन भयउ अनन्दा । कहेउ वचन मेटेउ दुख द्वन्दा ॥  
शब्द तुम्हार सुनत प्रिय लागा । दर्शन पाय मोह मद भागा ॥  
अकथ कथा सुनि चित मम मोहा । तुम पारस हम हैं जिमि लोहा ॥  
आगे और कहो मोहिं स्वामी । चरण गहूं प्रभु अन्तर्यामी ॥

सतगुरु वचन ।

धर्मदास युग लेख सुनाऊं । पुरवनयुग जिमि जगमहैं आऊं ॥  
अंश सजीवन नाम हमारा । हीरा पान दीन्ह संसारा ॥  
पुरवन युग की आयु बखानी । लाख पचास वर्ष सहिदानी ॥  
सुकृत हम घर घर फिरि आये । हंस कोई नहिं शब्द गहाये ॥  
जहां तहां कर देवन सेवा । आदि पुरुष को लखे न भेवा ॥  
आदि पुरुष निर्गुण है भाई । तीन लोक जिव रह दुहकाई ॥  
माया त्रिगुण सेव जग गचा । देही धर सकलों जग नाचा ॥  
पारब्रह्म जो ताहि न चीन्हा । प्रेम पुरुष जिन रचना कीन्हा ॥  
ध्रुव प्रह्लाद सकल जग बीते । शिव सनकादि भये जग रीते ॥

साखी-गण गन्धर्व मुनि देव सब, इन्द्रादिक औ शेष ।

शारद आदि न पायऊं, खोजत थेके गणेश ॥

चौपाई ।

योगी यती तपी को आहीं । सिद्ध सकल काल धर खाहीं ॥  
विरला जीव कोइ नामहि जाना । जापर दया पुरुष अनुमाना ॥  
हीरा पान जीव कहैं दीन्हा । सात लाख हंसा सँग लीन्हा ॥  
तिनमें सो पच्चीस नशाये । शब्द डोर परतीति न लाये ॥  
जीव पच्चीस गये यम द्वारा । फिर गर्भहि लीन्हे अवतारा ॥

मूल मंत्र तिन गहि नहिं पाई । ताते जीव गयो डहकाई ॥  
 जो कोइ हंसा होय हमारा । सो देखे पुरुष दरबारा ॥  
 सहस वर्ष आयु जिव कीन्हा । सकल हंस ज्ञानी संग लीन्हा ॥  
 ज्ञानी संग सब चलिवे लीन्हा । सत्य लोककी यात्रा कीन्हा ॥  
 पहुँचे तहां जहां जल रंगू । जल शोभा तहां उठत तरंगू ॥  
 जल रूपी तहाँ छत्र विराजै । सिंहासन तहँ अति प्रिय साजै ॥  
 श्वेत स्वरूप देखि सब ठोरा । आभा कहां कहुँ तेहि ओरा ॥

जलरंग वचन ।

तब जल रंग कहे को भाई । कौन अंश तुम कहां सिधाई ॥  
 हम निद्रा महँ रहे अलसाई । तुम हंसन ले लोक सिधाई ॥  
 अमर पुरुष पाँजी बैठारा । संग होय होवे जिव पारा ॥  
 हाथ हमार दीन्ह टकसारा । तुम मोहिं मेटि गये कस पारा ॥  
 पुरुष वचन कस मेटहु भाई । विन बूझे हंसन ले जाई ॥

सतगुरु उवाच ।

कह ज्ञानी सुनो जल रंगू । हम तुम एक नालके संगू ॥  
 हंसराज सो या मग तोहीं । सो हम जान कहा कहु मोहीं ॥  
 हम तुम एक आदि कोउ भाई । कस संशय आपन चित लाई ॥  
 हम तो युगन युगन मग आये । अमर पुरुष का संधि बताये ॥  
 सोई संधि आय हम पासा । कस आपन घट आनउ त्रासा ॥  
 हम लघु तुम जेठे मम भ्राता । एक और सुनिये विख्याता ॥  
 कुष्ठम पक्षी एक रहायी । तिन हमसों इक वचन सुनायी ॥  
 युग असंख्य बहु गये बितायी । ता दिनकी उन कथा सुनायी ॥  
 पक्षी कहे नयन हम देखा । युगन युगन का कहुँ विशेषा ॥

जलरंग वचन ।

तब संशय जल रंग जनायी । सुनिके वचन बोल अकुलायी ॥  
 महा प्रलय होवे जब भाई । पक्षी कौन अधार रहाई ॥

सो वृत्तान्त कहो मोहिं भाषी । पक्षी मोहिं दिखाओ आँखी ॥

सतगुरु वचन—चौपाई ।

तब ज्ञानी अस कहे समझाई । कुष्टमपक्षी कहँ बात सुनाई ॥  
महा प्रलय जब होवे भाई । स्वर्ग मृत्यु पाताल जलाई ॥  
ता पीछे गति अग्नि विशेषा । चौदह भुवन झलौ हल देखा ॥  
उलट पुलट पृथ्वी हो जायी । स्वर्ग रसातल जात नशायी ॥  
ब्रह्म लोक वैकुण्ठ न रहेऊ । शिव इन्द्रादिक सूर नशि गयऊ ॥  
तीन लोक जल बूडे भाई । कुष्टमपक्षी तब जल उतराई ॥  
सो पक्षी किहि भाँति रहाई । नीर माहिं जस फेन तराई ॥  
ऐसे पक्षी ता दिन कहई । तीन लोक मुख भीतर रहई ॥  
ब्रह्मा हर शंकर मुख माहीं । आदि भवानी तहां समाहीं ॥  
मच्छ कच्छ अरु शेष वराहू । ध्रुव प्रहलाद इन्द्र मुख माहू ॥  
सुर नर मुनि गन्धर्व जेते । यक्ष सराहू सब मुख तेते ॥  
चन्द मूर उड़गण सब झारी । ऋषि अरु नाथ सिद्ध अधिकारी ॥  
ये सब कुष्टमके मुख जायी । तीन लोक जिव तहां बचायी ॥

दोहा—तीन लोक चौदह भुवन, औ वैकुण्ठ पसार ॥

जा कहँ तपसी तप करें, सो सब मुखहि मैझार ॥

चौपाई ।

महा प्रलय भयो सहस सताइस । कुष्टमपक्षी एक रहाइस ॥  
यह उत्पन्न तहां ते जानो । तुम जल रंग सत्य कर मानो ॥  
सत्य आधार सत्य वह रहयी । सत्य पुरुष अस्तुति नितकरयी ॥  
पुरुष अंश पक्षी है सोई । महा प्रलय जानत सब वोई ॥  
अगम निगम सुमिरन भल करई । नाम आधार सदा चित धरई ॥

जलरंग वचन—चौपाई ।

कह जल रंग सुनो तुम वाणी । पक्षी दर्शन सुरति समानी ॥  
 अब तुम मोहि संग ले जाई । पक्षी मो कहँ देहु दिखाई ॥  
 तब जल रंग भेजि शठिहारा । चलो हंस सब संग हमारा ॥

ज्ञानी वचन चौपाई ।

यह सुनि ज्ञानी वचन उचारा । शब्द विमान होहु असवारा ॥  
 उभय विमान चढे मिलि दोई । चल विनोद हंस संग सोई ॥  
 ज्ञानी अंश चले सब आगे । तब जलरंग संग सब लागे ॥  
 क्षणमें गे पक्षी के पासा । लोक निरन्तर जहां निवासा ॥  
 दोय अंश तहँ ठाड रहाये । पक्षी कहँ तब जाय जनाये ॥  
 पक्षी बैठे आसन मारी । युग पचास की लागी तारी ॥

गण वचन ।

शब्द केर गण दीन्ह जगाई । खुल गइ तारी देखत लाई ॥  
 तब गण अस्तुति विनवै लीन्हा । बारम्बार दण्डवत कीन्हा ॥  
 ज्ञानी अंश पुरुष के आगर । अरु जलरंग साथ तेहि नागर ॥  
 कोटिन हंस संग तिन लाई । पौरि तुम्हार ठाढ भये आई ॥

कुष्टमपक्षी वचन ।

ज्ञानी जलरंग हि लाव बुलाई । तिन के साथ और नहिं आई ॥

गण वचन ।

दोई अंश सुनो मति मानी । पक्षी वचनन सुनुहु प्रमाणी ॥  
 सेना सकल छांडि तुम देहू । दोय अंश दर्शन तब लेहू ॥  
 उभय अंश पहुँचे तब जाई । पक्षी दर्शन ततक्षण पाई ॥  
 आदर बहुत भांति तिन कीन्हा । सिंहासन रचि बैठक दीन्हा ॥  
 दृष्टि पसार देखि जलरंगू । बहुत ज्योति पक्षी के अंगू ॥  
 जिमि कोटिन रविशशिले छाई । बहुत प्रकाश वरणि नहिं जाई ॥

कुष्ठमपक्षी वचन—चौपाई ।

पक्षी कहे सुनो हो ज्ञानी । केहि कारण तुम यहां सिधानी ॥  
तुम तो अंश पुरुष के आगर । केहि कारण पग धारेंड नागर ॥  
बडे भाग दर्शन हम पावा । अतिआनन्द मोहिं चित आवा ॥  
हम तो पक्षीमत नहिं जाना । तुम हो करता आदि पुराना ॥  
तुम्हरी सुधि कोई नहिं पाई । कीन्ह कृतारथ मान्दिर आई ॥

जलरंग वचन ।

तब जलरंग बूझे चितलाई । केतिक युग ते यहां रहाई ॥  
एतक संशय मम उर आवा । सत्य वचन मोहिं भाषि सुनावा ॥  
आदि अन्त जानो तुम बाता । मोसन भाषि कहो विख्याता ॥  
महा प्रलय पुरुष जब कीन्हा । कौन अधार कहां तुम लीन्हा ॥  
उलटि पलटि नभ धरणी जाई । तब सब जीव कहां ठहराई ॥  
जहवां जीव वास सब लाई । सो थल मो कहँ देहु बताई ॥

कुष्ठमपक्षी वचन ।

सुन जलरंग वचन मैं भाषों । युगकी कथा गोय नहिं राखों ॥  
महा प्रलय होवे जेहि बारा । तीनहु लोक होय जरि छारा ॥  
पृथ्वी जरी होय भरि पानी । स्वर्ग पताल जलहि जल आनी ॥  
दश योजन लग उठत तरंगा । महा प्रलय देखत जिव भंगा ॥  
तीन लोक जल परलय कीन्हा । हम तो जलमहँ पग नहिं दीन्हा ॥  
जैसे फेन जलहि उतराना । ऐसे बैठि पुरुष धरुं ध्याना ॥  
उतपति परलय भाषि सुनाये । हम कबीर के अंश कहाये ॥

दोहा—जब पक्षी मुख बोलिया, अचरज भयो प्रसंग ॥

कोटि रूप लखि आपनो, दृष्टि देख जलरंग ॥

चौपाई ।

कला देखि चक्रित मन भयऊ । मन का गर्व दूटि सब गयऊ ॥  
तब कबीर निरखे चितलायी । जलरंग कौतुक देखि लजायी ॥

जलरंग वचन-चौपाई ।

लीला देखि शीश तर दीन्हा । अरु कबीरकी अस्तुति कीन्हा ॥  
 देही धर हम रहे भुलाना । सत पुरुष हम तुमहिं न जाना ॥  
 आदि अन्त तुम पुरुष हमारा । अस्तुति करे जलरंग अपारा ॥  
 हम आपन मन में बड होई । नाम कबीर पुरुष है सोई ॥  
 यह कौतुक देखा हम ज्ञानी । तुमही पुरुष और नहिं आनी ॥

हंस वचन ।

अस्तुति करें हंस सब ठाढे । कौतुक देखि हर्ष चित बाढे ॥  
 धन्य धन्य तुम आदि गोसाई । पक्षी देह कहो किमि पाई ॥  
 यही वचन तुम कहो विचारा । तो तुम कर्ता सिरजन हारा ॥

कुष्ठमपक्षी वचन-चौपाई ।

पक्षी कहे सुनो हो भाई । पूरव कथा कहूं समझाई ॥  
 हम कबीर आज्ञा नहिं कीन्हा । ताते पक्षी तन धर लीन्हा ॥  
 देह धरे भये युग दश लाषा । सत्य वचन हम तुमसन भाषा ॥  
 सहस सताइस परलय कीता । हम आगे इतना युग बीता ॥  
 हो जलरंग कहां तक कहउं । शून्य असंख्य द्वीपमें रहउं ॥  
 वहां बैठि परलय हम देखा । सबही बडे जीव जल पेखा ॥  
 पुरवन युग की कथा सुनाई । देख हंस हर्षित हां आई ॥  
 हीरा पान जल रंगहि दीन्हा । कुष्ठम दर्शन जिहिदिन लीन्हा ॥  
 हिलि मिलि भेद एककर जानां । तीनेहु अंश बहुत सुख मानां ॥  
 अब पक्षी के नाम सुनाऊं । सात नाम में प्रगट बताऊं ॥

साखी-जिव सागर आनंदसुख, हंस उबारन धाय ॥

प्रलय देखि विस्मित हृदय, दायर कुष्ठम नाम ॥

जलरंग वचन-चौपाई ।

जल रंग पायउ हीरा पाना । संशय गत हर्षित मन आना ॥  
 तुम लीला स्वामी अवगाहा । अंश हंस नहिं पावत थाहा ॥

छन्द-तुव चरित्र अगम अपार पावन लखि न काहूको परो ॥  
 मम चित्त गर्व घटाववे गुण देह पक्षी को धरो ॥  
 तुव कला जानि परी न हम को धरेउ अमित स्वरूप हो ॥  
 वहां पुरुष ह्यां हंस हो हम जान हंसन भूप हो ॥  
 सोरठा-चरण कमल बलिहार, कीन्ह दण्डवत विनय बहु ॥  
 हरषित भये अपार, रंक नरहि जिमि निधि मिले ॥  
 सकल हंस वचन-चौपाई ।

खडे हंस सब पौरि दुवारा । तिनसब हिलिमिलि विनतीधारा ॥  
 कारण कौन दर्श नहिं पाये । तुम हंसन नायक प्रभु आये ॥  
 गे शठिहार हंस ले आवा । अरु पक्षी के दर्श करावा ॥  
 देखि रूप अति हर्ष समाना । तब ज्ञानी की अस्तुति ठाना ॥  
 छन्द-तुम आदिपुरुष अखंड अविचल पतित पावन नाम हो ॥  
 जीव बन्धन काट फन्दन जात लै निज धाम हो ॥  
 योग जीत कबीर ज्ञानी नाम जग महुँ गाइया ॥  
 अकह अभय अपार तुम गति भाग जिन पद पाइया ॥  
 सोरठा-जुरे हंस बहु बृन्द, फूल रहे अरविन्द जिमि ॥  
 गति यामिनिसुख कन्द, अरुण चरण लखि अमिय कर ॥  
 विनय कीन्ह बहु वार, पद पंकज को ध्यान धरि ॥  
 हे प्रभु तुम बलिहारि, करै दण्डवत हंस सब ॥  
 इति श्रीअम्बुसागरे परवनयुगकथावर्णनं नाम चतुर्थस्तरंगः ।

### अथ पंचमस्तरंगः ।

अनुमानयुग कथा वर्णन ।

धर्मदास वचन-चौपाई ।

धर्मदास टेके गुरु चरणा । अगम कथा भाषेउ प्रभु वरणा ॥  
 बहुतक ग्रन्थ सुनायउ काना । अम्बुसागर ग्रन्थ बखाना ॥  
 सुनि हितवचन मोहिं प्रियलागा । चातक स्वाति पाय जिमि पागा ॥

युग अनुमान कहो मोहिं भाषी । और शब्द कहँ चित अभिलाषी ॥

सतगुरु वचन—चौपाई ।

धर्मदास मैं भाषि सुनाऊं । आदि रु अंत प्रसंग बताऊं ॥  
जा दिन पुरुष बोल अनुसार । एक शब्द ते कीन्ह पसारा ॥  
बाणी ते माया उत्पानी । तीन पुत्र तिन कीन्हा ठानी ॥  
ब्रह्मा विष्णु महेश्वर कीन्हा । तीन लोक तिहु पुत्रन्ह दीन्हा ॥  
ब्रह्मा हाथ चार दिय वेदा । तीन लोक महँ करत न खेदा ॥  
नेम धर्म अरु सकल पुराना । यह ब्रह्मा सब कीन्ह बखाना ॥  
विष्णु देव मृत्यु लोकहि आये । तुलसी माला पंथ चलाये ॥  
माला गले शंखिनी डारा । तीन लोक महँ है बड भारा ॥  
राजा प्रजा सेव सब करई । विष्णु इष्ट सुमिरण मन धरई ॥  
सेवत आये भये अनुरागी । करत संहार कहत हम त्यागी ॥  
जार बारि तन कष्ट कराई । योग पन्थ यहि भाँति चलाई ॥  
योगी यती तपी संन्यासी । आपन मुख कह हम अविनाशी ॥  
शिव महिमा भाषत संसारा । दक्षिणदिशि महिमा अधिकारा ॥  
तीन पुत्र तिहुँ लोक सपूता । माता सों इन कीन्ही धृता ॥  
माया कह माने नहिं कोई । आपहि आप कहावे सोई ॥

आद्या लीला ।

तब आद्या मन कीन्ह विचारा । तीन पुत्र भये सिरजन हारा ॥  
माया मन झंखे बहु बारा । तीनों पुत्र भये बरियारा ॥  
नाम हमारा दीन्ह छिपाई । तीन लोकमहँ अदल चलाई ॥  
तब आद्या घट सुमिरण लावा । आपन माहिं आप निरमावा ॥  
देवी अपनो मथ्यो शरीरू । शक्ति तीन उपजी बल वीरू ॥  
तिन का नाम कहूँ समझाई । रम्भा सुचिल रेणुका आई ॥  
इन हिलि मिलि गण गंधर्व मोहा । राग रागिनी बहुविधि शोहा ॥  
कर आभूषण गंधर्व लीन्हे । सकल साज तिन हाथन दीन्हे ॥

तिनका नाम कहूँ समझाई । बीनर बाबत मूरा लाई ॥  
 सितार कमायच अरु मुहचंगा । ताल मृदंग नफेरी संगी ॥  
 जलतरंग औ मुरली किंकिन । मोहर उपंग मंडल स्वर तिन्तिन ॥  
 बाजे और छतीसों कहिया । गंधर्व हाथ साथ सब लहिया ॥  
 मास महीना फागुन सोई । ऋतु वसन्त गावें नर लोई ॥  
 टेसू वनस्पती सब फूले । अम्बा मौर डार सब झूले ॥  
 चातुक धारहिं वचन सुहावन । हंस कोकिला कोयल पावन ॥  
 पिया पिया चातुक प्रिय कहहीं । विरहिनि लाग मदन दुखजरहीं ॥  
 अंग अभीर गुलाल चढाये । नाना भांतिन अतर लगाये ॥  
 कामिनि हेतु काम लव लाये । अंग अनंग बहुत विधि छाये ॥  
 या चरित्र माया उपराजा । तीनहु लोक राग बल गाजा ॥  
 जो सुन राग विषय मन धरहीं । बार बार ते यम घर परहीं ॥  
 अविगत मोह राग रे भाई । राग सुनत जिव गै डहकाई ॥  
 माया ध्वनि रागन को बांधा । जासे तीन लोक घर सांधा ॥  
 प्रथमहि राग षष्ठ विधि गावा । तिन रागन का नाम सुनावा ॥

❀ रागोंके नाम ।

दोहा-भैरों और हिंडोल अति, पंचम राग कवस्त ।

दीपक मेघमलार भल, कीन्ह देव सब दस्त ॥

❀ यद्यपि इसमें ऐसा लिखा है किन्तु समयके फेरसे लेखकों की कृपासे ग्रंथोंकी जो दुर्दशा होरही है उसका न कहनाही अच्छा है इस कारणसे अन्य संगीतकी पुस्तकसे राग रागनियोंके नाम यहांपर लिखते हैं ।

षट् राग-दोहा ।

राग प्रथम भैरों कह्यो, मालकोस पुनि जान ।

हिंडोल राग तीजो कहत, दीपक राग बखान ॥

श्रीराग कवि कहत हैं, मेघ राग पुनि सार ।

षट् रागन के नाम यह, कहैं भेद विस्तार ॥

## चौपाई ।

कीन्ह उचार राग तेहि वारा । ऋषिमुनि मोह देव सब झारा ॥  
 माया डारी सब पर फांसी । योगी यती तपी संन्यासी ॥  
 ततक्षण देवी रची धमारा । इकसठ रागिनि तहां उचारा ॥

रागोंकी रागिनियोंके नाम ।

भैरों की धुनि भैरवी, बंगाली बैरवी ।  
 मधुमाधव अरु सिन्धवी, पांचों विरहिनि नारि ॥  
 टोडी गौरी गुनकली, कुंमार्यत पहिचान ।  
 और कोकंब को कहत हैं, मालकोसकी जान ॥  
 रामकली पटमंजरी, और कहै देवसाख ।  
 ये नारी हिंडोल की, ललित बिलावल राख ॥  
 देशी नट अरु कान्हरो, केदारो कामोद ।  
 दीपक की प्यारी सबै, महा प्रेम परमोद ॥  
 धनासंगी आसावरी, मारू बहुरि वसंत ।  
 श्रीराग की रागिनी, मालश्री है अन्त ॥  
 भोपाली अरु गूजरी, देशकौर अरु मल्लौर ।  
 बंके वियोगिनी कामिनी, मेघरागकी नार ॥

छहों रागोंके गुण ।

भैरों शूर शूरता गहै, कोल्हू चलै जु धाय ।  
 मालकोस तब जानिये, पाहन पिघिलि बहाय ॥  
 चलै हिंडोलो आपते, सुनत राग हिंडोल ।  
 बरसे जल घन धार अति, मेघराग के बोल ॥  
 श्रीराग के सुर सुने, सुखो वृक्ष हराय ।  
 दीपक दीयो बरि उठै, जो कोउ जानै गाय ॥

रागोंका समय ।

पिछले पहरे निशि समै, भैरों राग बखान ।  
 मालकोस तब गाइये, जब सब निकसे भान ॥  
 एक पहर जब दिन चढै, करै राग हिंडोल ।  
 ठीक दुपहरी के समय, दीपक के सुर बोल ॥

तेहि रागिनि के नाम सुनाऊं । भिन्न भिन्न कर प्रगट बताऊं ॥

## इकसठ रागिनियोंके नाम ।

१ धनाश्री २ जैतश्री ३ मालश्री ४ श्री ५ गुजरी ६ विरावरी  
७ आशावरी ८ जैतसारी ९ गन्धारी १० वरारी ११ सिन्धूरी  
१२ पंचश्री १३ गौरी १४ जौनपुरी १५ विहागरा १६ कान्हारा  
१७ केदार १८ मारू १९ मलार २० धूरिया मलार २१ गौड  
मलार २२ गडमलार २३ भूपाली २४ सुरकली २५ श्रीमाल  
२६ धूरकली २७ रामकली २८ रूपकली २९ गुनकली ३० सु-  
हेली ३१ मोरवी ३२ पूर्वी ३३ कैरवी ३४ भैरवी ३५ कान्हारा  
३६ तिलाना ३७ कल्यान ३८ यमन ३९ कल्यानी ४० सजीवनी ४१  
सेधु ४२ मधुगन्ध ४३ सावन्त ४४ ललित ४५ सोरठ ४६ मरहठी  
४७ टोडी ४८ नट ४९ गोड ५० विभास ५१ सुदेश ५२ सूहा  
५३ परज ५४ काफी ५५ चन्द ५६ सुधराय जैजैवन्ती ५७ चर-  
नायका ५८ सारंग ५९ बंगला ६० नायका ६१ खम्माच ।

चौपाई ।

मोहे ब्रह्मा विष्णु महेशा । नारद शारद और गणेशा ॥  
शंकर जग महँ बड अवधूता । काम जार हो रहे सपूता ॥  
कहँवा भूल गये अनुरागी । काम विरह तन उठउठ जागी ॥  
मदन अनूप राग है भाई । सत पुरुषन सों विचलन लाई ॥  
सुरपति सनकादिक मुनि जेते । काम कला सब नाचे तेते ॥

श्रीराग चौथ पहर, जौलों दिन अथवाय ।  
मेघराग तबही भलो, जबै मेघ बरसाय ॥  
फागुन में ये राग सब, जागत आठों याम ।  
वसंत ऋतुमें निशि समय, एकयाम विश्राम ॥  
भैरों शरद कुसक शिशिर, अरु हिंडोल बसंत ।  
दीपक ग्रीष्म हेमश्री, मेघ सुपावस अन्त ॥

देखत छवि मोहे सब झारी । सुर समान माया गहि मारी ॥  
 सकल देव जब गे अकुलाई । काहू कर मन थिर न रहाई ॥  
 बूझो पंडित सुर मुनि ज्ञानी । जा महिमा तुम करत बखानी ॥  
 वेद पुराण भागवत गीता । पढि गुणि कहैं काल हम जीता ॥  
 तीनों गुण ईश्वर ठहरायी । माया फन्दा ताहि बनायी ॥  
 कैसे ताहि होय निस्तारा । जिन नहिं माना शब्द हमारा ॥  
 राघवानन्द नाम युग केरा । माया चरित कीन्ह तेहि बेरा ॥  
 तेहि द्विराग का कीन्ह उचारा । सकल जीव इमि मारपछारा ॥  
 अब हंसन का भाषूं लेखा । धर्मदास चित करो विवेखा ॥  
 छन्द-ताहि युग हम आय जीवन दीन्ह अमृत पान हो ॥  
 सहस सात उबारि जीवन जाय लोक समान हो ॥  
 पुरुष दर्शन कीन्ह ततक्षण रूप अविचल पाइआ ॥  
 पुष्प शय्या वास कराइ फल अमृत ताहि चखाइआ ॥  
 सोरठा-तुम बूझहु धर्मदास, युग युग लेखा भाषेऊं ।  
 चीन्हे कोइ इक दास, जेहि सत गुरु दाया करें ॥

इति श्रीअम्बुसागरे अनुमानयुगकथावर्णनो नाम पंचमस्तरंगः ।

### अथ षष्ठस्तरंगः ।

धीर्यमाल युगकी कथा ।

धर्मदास वचन-चौपाई ।

धर्मदास कहे सुनो गोसांई । अगम कथा तुम मोहिं सुनाई ॥  
 माया चरित दृष्टि हम आया । तीनों गुण बहु देव भुलाया ॥  
 अब जो और होय सो भाषो । समरथ मोसे गुप्त नहिं राखो ॥

सतगुरु वचन ।

आगे ज्ञान कही समझाऊं । मूल नाम की कथा सुनाऊं ॥  
 मूल नाम ना काहू पासा । पावे मूल कहावे दासा ॥

कलियुग साधू बहुत कहाये । मूल शब्द कोइ विरले पाये ॥  
 मूल शब्द ताकर है नामा । जाते वीर हंस भये कामा ॥  
 रंग रंगीले हंस भये तीनी । पक्षी वीरा हंस प्रवीनी ॥  
 वीरा दीन हंस पहुँचायी । महा पुरुष के दरश करायी ॥  
 सोई नाम साधु जो पावे । योनी संकट बहुरि न आवे ॥  
 द्वीप असंखन करे बिलासा । जरा मरण की छूटी त्रासा ॥  
 जो वह नाम साधु नहीं जाना । सो साधू भये जिवत मसाना ॥  
 अकह नाम कैसे कै जानी । लिखि नहीं जाय पढो नहीं वानी ॥  
 कलियुग साधु कहैं हम जाना । झूठ शब्द मुख करहिं बखाना ॥  
 कोटिक नाम जपो रे भाई । कौनिहु भाँति युक्ति नहीं पाई ॥  
 नाम अनन्त अहौ संसारा । किंचित है निज शब्द हमारा ॥  
 देही नाम सबै कोइ जाना । नाम विदेह विरल पहिचाना ॥  
 काया धरि हम घर घर आये । काया नाम कलामल पाये ॥  
 ताते मोहिं ओछ कर जाना । आप आप में करे बखाना ॥  
 दिल कहैं कहे कबीर कबीरू । पांचों तत्त्व तीन गुण थीरू ॥  
 दिल महँ बोलत ब्रह्म बखाना । अन्तकाल होवे जिव हाना ॥  
 दिल महँ बोलत कौने ठौरा । भेद बतावहु साधू मोरा ॥  
 ठौर न जान कहे कुछ औरा । सो जिव मार काल झकझोरा ॥  
 दिल भीतर महँ करे विवेका । करे खोज तब आगे देखा ॥  
 रचि पचि धुनि माथो गहि मारा । बिन सतगुरु नहीं होवे पारा ॥  
 नाम सों बांधि सुरति है भाई । सुरति निरतिमिलि शब्द समाई ॥  
 सुरति औ निरति शब्द करे ठौरा । सो साधू होवे निज मोरा ॥  
 तीनों गुण सों बांधे हेता । अन्तकाल होवे सो प्रेता ॥  
 माथे टोपी तिलक बनायी । माला गले सरवनी लायी ।  
 कहे सकल सब हमही पाये । पेलि जीव यम द्वारे आये ।

अपने मुख हो गुरू कहावे । गुरू कहि कहि सब जीव भुलावे ॥  
 गुरू शिष्य दोनों डहकायी । विना शब्द जो गुरू कहायी ॥  
 अथवा पांच नाम नहिं जाना । नरियर मारहि भय विज्ञाना ॥  
 दोहा-बहुत गुरू संसार में, कोइ न लागे तीर ।  
 सभी गुरू बदि जायँगे, जाग्रत गुरू कबीर ॥

चौपाई ।

मूल दीप कर श्वेतहि पाना । धीरज मान जु भाषेउ ज्ञाना ॥  
 वीरा नाम विरोधिक भाई । धीरमाल युग जीवन पाई ॥  
 लाख हंस कागज मँहँ राखा । सुरति नाम जीवन सों भाषा ॥  
 नाम अचिन्त पुरुष कर सारा । यही नाम जीवन रखवारा ॥  
 पुरुष नाम खोजो जो भाई । पावे हंस लोक कहँ जाई ॥  
 लोक वेद की छोडे आशा । अगम पान का कर विश्वासा ॥  
 आगम आन अगम के हाथा । आदि अन्त वे सब के साथी ॥  
 वीरा नाम जीव उपदेशा । सतगुरु आये काटि कलेशा ॥  
 जो हंसा सतगुरु कहे करई । आज्ञा मान चरण कहे धरई ॥  
 आर्य पुरुष के दर्शन पावे । षोडश भानु रूप जहँ आवे ॥  
 दक्षिण औ पूरव पुनि पश्चिम । तीनहु खूंट देख हम सूक्ष्म ॥  
 उत्तर दिशा धनी को देशा । तहाँ न व्यापे यम का लेशा ॥

छंद-आर्य पुरुष दीन्ह आज्ञा जीव कारण आइया ॥

युग धीर्यमाल में दीन्ह वीरा लक्ष हंस पठाइया ॥

अमर लोकहि लीन्ह वासा पुरुष के दर्शन लहै ॥

रूप षोडश भानु होकर अमिय आसन तहँ अहै ॥

सोरठा-पुष्प मनोहर बास, कर कंकण शिर मुकुट मणि ॥

माथे छत्र विलास, कला कुतूहल हंस मिलि ॥

इति श्रीअम्बुसागरे धीर्यमालयुगकथावर्णनं नाम षष्ठस्तरंगः ।

## अथ सप्तमस्तरंगः ।

तारण युग कथा वर्णन ।

धर्मदास वचन-चौपाई ।

धन्यभाग तुम मम गृह आवन । दर्शनदीन्ह कीन्ह मोहिं पावन ॥  
मोहि अधम कह कीन्ह सनाथा । बार अनेक नवायउ माथा ॥  
खोजी होय शब्द पहिचाना । जाग्रत हंस होय निर्वाणा ॥  
जिन जीवन पर तुम्हरी दाया । तिन कह दीन्हेउ लोक पठाया ॥  
और हंस जिन सेवा लाये । युग युग महिमा मोहिं सुनाये ॥

सनगुरु वचन-चौपाई ।

सुकृति सुनो लोक की बानी । आदि पुरुष अरु बैठे ज्ञानी ॥  
बीरा पुरुष दीन्ह मोहि हाथा । जाते हंसा होय सनाथा ॥  
तारण युग परमाना आनी । चार लाख युग आयु बखानी ॥  
युग आयुर्बल जीव का भाई । सहस एकादश वर्ष रहाई ॥  
उत्तम पंथ रहे इक राई । धर्मदास तेहि कथा सुनाई ॥  
योगी यती तपी गहि बांधे । देखत ताहि कोठरी धांधे ॥  
संन्यासी ब्राह्मण बैरागी । देखत ताहि क्रोध अति जागी ॥  
षट्दर्शन कहैं देखत जरई । जरत हुतास ज्वाल घृत परई ॥  
ब्राह्मण माथे टीका ठाटा । लेख परी घस ताहि ललाटा ॥  
ब्राह्मणको ले सांटी मारे । तोर जनेऊ आगी डारे ॥  
वेद पुरान पढन नहिं पाई । भक्ति राह मर्याद उठाई ॥  
या विधि शासत जीवन देई । हरि हरि नाम न कबहूँ लेई ॥  
बनके मृगा चरन नहिं पावे । द्विपद चतुष्पद धरि धरि खावे ॥  
मारे जीव जन्तु बहुतेरा । कोइ न बचे मार बहुघेरा ॥  
ऐसा अधम चाल तेहि राजा । जीवन कष्ट देखि भइ लाजा ॥  
तब अपने चित कीन्ह बिचारा । व्यङ्ग कौन आयउ संसारा ॥

बटका वृक्ष तासु दरवाजा । ताहितरे हम आसन छाजा ॥  
 आसन मारि ध्यान महँ पागे । एकहि सुरति नाम चित लागे ॥  
 यहि अन्तर इक वृषली आई । नाम सगुनिया तासु रहाई ॥  
 आय ठाढ़ि भइ साहिब आगे । विनय कीन तब पूछन लागे ॥  
 कौन देश कौने अस्थाना । यहवां साहिब कीन्ह पयाना ॥  
 जो मांगो सो देहुँ मैगाई । ले भिक्षा आगे चल जाई ॥  
 विषम द्वार यह राय अपारा । राजा दर्शन करहि तुम्हारा ॥  
 राजा नाम सुने जो पाई । तुर्तहि गर्दन मारिहि आई ॥

दोहा—इकइस पौरि के भीतरहि, तहँ बैठे हैं राय ॥

कोई गम नहिं पावई, रानी संग रहाय ॥

स्वामी वचन—चौपाई ।

स्वामी कहे सुनो तुम बाता । राजहि जाय कहो विख्याता ॥  
 दरश हमार करे जब आई । अगम निगम हम भेद बताई ॥  
 राय परीक्षा हमरी पावे । छूटे हंस लोक कहँ जावे ॥  
 तुम जिन शंका मन महँ आनो । निश्चय बचन हमारा मानो ॥  
 बचन हमार राय पहुँ जाहू । सकल पौरिया बश तुम आहू ॥  
 सुनतहि बचन माथ तब नाई । तब भीतर कहँ दीन्ह रिंगाई ॥  
 पहिली पौरि उलंघेउ जबही । दूजी पौरि पहुँचिगयो तबही ॥  
 तीजे पौरि पै पूछन लीन्हा । चौथी पौरि जाय पग दीन्हा ॥  
 पांचे पौरि संग मिलि गयऊ । बहु आधीन छठी तब भयऊ ॥  
 सातों पैवरि भयउ उठि ठाढा । आठों पौरि हरष चित बाढा ॥  
 नवी पौरि पर माथ नवाई । दशे पौरिया आदर लाई ॥  
 पौरि इकादश पूछे बाता । द्वादश पौरि देख कह माता ॥  
 त्रयोदश पौरि बचन अनुसार । चौदह पौरि लाग कछु बारा ॥  
 पन्द्रह पौरि देख बश भयऊ । षोडश पौरि देख मन रहेऊ ॥

सत्रह पौरि सांच तब बोला । पौरि अठारह अन्तर खोला ॥  
 उनइस पौरि सबन अधिकारा । बीसइ पौरि कीन्ह पैठारा ॥  
 इकइस पौरि ठाढ जब भयऊ । छरीदार तब पूछन लयऊ ॥  
 कह काहे भीतर चल जाई । कौन काज तहँ राय रहाई ॥  
 राजा गर्दन मारै तोरी । सत्य बचन माने दृढ मोरी ॥

वृषली वचन—चौपाई ।

स्वामी रोकि बैठे दरवाजा । तिन की खबर कहो तुम राजा ॥  
 भल जानो तो जाय जनाऊ । नातरु फेरि बहुत पछताऊ ॥  
 छरीदार संशय मन लाई । अगम बात यह जाय सुनाई ॥  
 सोच करन तब लाग शरीरू । राजा बंग बडे बल बीरू ॥  
 सत्य वचन तुम कहो विचारी । गर्दन मारे राव हमारी ॥

सगुनिया वचन—चौपाई ।

कह वृषली सुन बात हमारा । ये तो करता सिरजन हारा ॥  
 अनहित कर जनि बोलहु वाणी । गजहि खबर कहो तुम जानी ॥

छरीदार वचन—चौपाई ।

छरीदार भीतर चलि गयेऊ । कीन्ह प्रणाम ठाढ तब भयऊ ॥  
 दोउ कर जोरि बोल सत भावा । सिंह एक द्वारे तुम आवा ॥

राजा वचन—चौपाई ।

तब राजा बूझन अस लावा । केहि कारण सन्मुख तुम आवा ॥  
 अपनी बात कहो समझाई । केहि कारण तुम हमलग आई ॥

छरीदार वचन—चौपाई ।

आय सगुनिया हमरे पासा । बचन एक हम सो परकाशा ॥  
 स्वामी एक बैठा है द्वारा । तिन राजा कह बेग पुकारा ॥  
 साहिब दरश देन कहँ आये । तेहि कारण हम इहां सिधाये ॥  
 जो महाराजा आयसु पाऊं । जाय सिखावन ताहि सुनाऊं ॥

राजोवाच-चौपाई ।

सुनतहि राय कोप चित लायो । वह स्वामी को मार डरायो ॥  
 कहे सुगुनिया वचन प्रकाशी । तो कहँ राय दिवावें फांसी ॥  
 यह सुनि छरीदार उठ धाये । वृषली कहँ तब वचन सुनाये ॥  
 भाग सुगुनिया कहै संदेशा । छांडहु द्वार लेहु परवेशा ॥  
 राज कोप बहु चिन्तन कीन्हा । छरीदार मोहिं मारन लीन्हा ॥  
 तुम यहवां ते बेग सिधार्ह । और देश महाँ बैठो जाई ॥  
 पल इक महाँ अब होय पुकारा । यहां न रहना होय तुम्हारा ॥  
 कहँ पुकार सुनो तुम बाता । पल महाँ राजा करिहै घाता ॥  
 साहिब सन चित कीन्ह विचारा । घट भीतर तब सुरति सम्हारा ॥  
 उठा कोप पुनि कीन्ह समाई । हम तो राय उबारण आई ॥

साखी ।

जो अन इच्छा होय मम, तुर्त होत है नाश ॥

पुरुष वचन सम्हारके, अन्तहि करहु निवास ॥

चौपाई ।

यह तो जीव अबुध अज्ञानी । समझ अपन घट नाहिं न आनी ॥  
 छोडि द्वार तब दीन्ह रिंगार्ह । पुरी बाहर हम पहुँचे जाई ॥  
 मान सरोवर जहँ इक सागर । बैठे जाय तहां प्रभु नागर ॥  
 नगर लोग जल तहां भराई । सागर दीरघ अति रहे भाई ॥  
 सोई जल राजा कहँ जाई । क्षितिया लौंडी लै पहुँचाई ॥  
 राजा रानी सबै अन्हाये । तेहि वृषली कर जल सब पाये ॥  
 सवा प्रहर दिन चढे प्रमाणी । तब लग राय नींद अलसानी ॥  
 उठत राय क्षितिया चलजाई । कंचन कलशा जल कहँ जाई ॥  
 धोय मांज जल घडा बुडावा । लीला एक तहां हम लावा ॥  
 घडा तासु बाहर नहिं होई । क्षितिया लौंडी तब अति रोई ॥

तब वृषली बहु कीन्ह पुकारा । तुरतहि राउ डार मोहिं मारा ॥  
 गगरी भरे उठे नहिं भाई । बहुत नारि देखन कहैं धाई ॥  
 सरवर भीतर लोग अन्हाई । सो सब गागर आन उठाई ॥  
 दश अरु वीश पचीसक आये । गागर को सब लोगहि धाये ॥  
 बजत हँकार लगे तब कीन्हा । रंचक घडा उठन नहिं लीन्हा ॥  
 सवा पहर दिन ऐसही बीता । क्षितिया त्रास जीव बहु कीता ॥  
 कैसे जल तें घडा निकारी । भयउ अबेर राउ मोहिं मारी ॥  
 अपने चित अति मानेउ त्रासा । जलमहँ घडा पकड को गांसा ॥  
 सागर आवत जन्म बिताई । कौन चरित्र आज भौ भाई ॥  
 सो दो मानुष तहवां आये । तेउ हार बहुत सकुचाये ॥  
 खबर पाय राजा चलि आये । रानी सुनिके अचरज पाये ॥  
 तब राजा कहैं बात जनाई । सुनकै राय रहे अरगाई ॥  
 तब राजा चित कीन्ह बिचारा । यह तो बात अगम व्यवहारा ॥  
 चला राय बाहर तब आवा । सकल लोग कहैं वचन सुनावा ॥  
 सुनिके लोग भये अज गूता । घडा उठावन चले सपूता ॥  
 राजा तबही तुरंग मैगाई । हो असवार चले चतुराई ॥  
 नेगी पंडित और प्रधाना । देखत सकल चले अकुलाना ॥  
 सहस वीस मानुष तब जाई । राजा संग चले सब धाई ॥  
 नगर लोग सबही चलि आये । बालक त्रिया वृद्ध सब धाये ॥  
 कुंजर रांकर राय नगावा । बांधो घट बहु लोग लगावा ॥  
 सहस वीश मानुष पचिहारे । किंचित घडा टरत नहिं टारे ॥  
 तबही राय बहुत हँकराई । सहसन कुंजर दीन्ह लगाई ॥  
 फीलवान आंकुश गज मारा । मारत गज तब देह चिकारा ॥  
 नेक घडा नहिं उठत उठाये । राजा मन तब हार लजाये ॥  
 चार लाख मानुष रह ठाढा । देखत सकल अचम्भा बाढा ॥

छन्द-राय देखत भयउ व्याकुल वार बहु जल निरखही ॥  
 आज अचरज भयो अति हि घडा गहि यह कोहही ॥  
 सहस कुंजर लाग मानुष नहीं किंचित सो टरे ॥  
 कीन्ह बहुत उपाय हारेउ अभय देखत जिव डरे ॥  
 सोरठा-मंत्री करहु विचार, हम घट अति संशय भयो ॥  
 व्याकुल चित्त हमार, कीजै कौन विचार अब ॥

चौपाई ।

मंत्री कहे सुनो महाराजा । कहत वचन आवत है लाजा ॥  
 साधु एक आया दरवाजा । तापर आप कीन्ह इतराजा ॥  
 सो स्वामि यह चरित दिखायी । हमरे चित अस वर्तत आयी ॥  
 यहि अन्तर एक कीन्ह तमाशा । सो लीला भाषू धर्मदासा ॥  
 सरवर भीतर वृद्ध ग्हाई । सुवा रूप धरि बैठे जाई ॥  
 देखि पारधी ततक्षण आवा । बाण खैंच मारन कहँ धावा ॥  
 उलटा बाण पारधिहि लगा । लगत बाण पारधी भागा ॥  
 दोय चार सो जाइ जनाये । देखन ताहि लोग पुनि आये ॥  
 दृष्टि पसार सुवा कहँ देखा । सुन्दर सुवा वरण अति लेखा ॥  
 कर गुल्लेल लै गुला चढाये । टूटा गुला खंड हो जाये ॥  
 दो चार दश वीश पचासा । सुवा केर सब दीख तमाशा ॥  
 तारी ठोंके ढोल बजाये । सुवा नहीं तहँ उडे उडाये ॥  
 तबही लोग राय कहँ जाई । सुवा एक यहि वृक्ष रहाई ॥  
 बहुत रूप ताकर महाराजा । कीन्हेउ शोर बजायउ बाजा ॥  
 तहवां तें नहिं सुवा उडाये । बैठि वृक्ष आनँद मन लाये ॥  
 गागर छोड राय चल गयऊ । आज्ञा राय पारधी दयऊ ॥  
 जाय पारधी सुवा फँदावो । जो मांगो सो तुरतहि पावो ॥  
 चले पारधी तुरतहि गयऊ । सूवा पर फन्दा तिन्ह नयऊ ॥

जब फन्दा बहु डारे भाई । तबही सुवा छोट हो जाई ॥  
जब वह फन्दा छोटा कीन्हा । तबही रूप बडा धर लीन्हा ॥  
बहुतक यत्न पारधी लाये । ताहि सुवा हाथ नहिं आये ॥  
सकल पारधी रह तब हारी । राजा सों तब कहें पुकारी ॥  
सुवा न आवे हमरे हाथा । चाहो तुरत कटाओ माथा ॥  
बहुतक रूप सुवा के अंगा । राजा देखि भये चित भंगा ॥  
सात रोज ऐसहि जब बीता । राजा अन्न सुधा नहिं कीता ॥  
हम कहैं देख कीन्ह बड़ प्रीती । तब मोहिं उठी सत्यकी रीती ॥  
तब मैं उडा तहां तें भाई । राजा हाथहि बैठ्यो जाई ॥  
ततक्षण रानी देखी आई । देखि सुवा बहु सुंदरताई ॥  
जगमग ज्योति बहुत उजियारा । उन मुन रहन सुवा की धारा ॥  
रानी तब भीतर चलि जाई । अरु राजा कहैं बात जनाई ॥  
सुनतहि राय हर्ष चित आवा । जैसे रंक महा निधि पावा ॥  
वेगि राय तहवां पगु धारा । देख सुवा हर्षेउ बहु वारा ॥  
राजा चीन्हा सुवा वहि आही । जा कारण हम कष्ट कराही ॥  
सरवर वृक्ष सुवा में देखा । सोई सुवा यह आय विशेषा ॥  
कंचन केरि कटोरी लीन्हा । दूधे भात ता भीतर कीन्हा ॥  
रानी लेकर आई धाई । उडकर सुवा हाथ पर जाई ॥  
तबही पकड प्रेम हित लावा । रानी राजा बहु सुख पावा ॥  
तब राजा मंत्री हकरायो । चतुर सोनारहि तुरत बुलायो ॥  
ततक्षण राव कीन्ह ज्योनारा । आये सुनारा बहुत तेहि वारा ॥  
राजाढिग गये चतुर सोनारा । तिन सो राजा वचन उचार ॥  
अहहु प्रवीण चतुर अधिकाई । पिंजरा देहु हमार बनाई ॥  
सहस पचीस मुहर तब दीन्हा । पिंजरा तबै बनावन लीन्हा ॥  
सवा लाख हीरा लग मोती । दीन्हेउमणितिनकी जडज्योती ॥  
सात हजार लाल की पाती । शोभा बहुत कहूँ का भांती ॥

बारह वर्ष बनावत गयऊ । तबलग सुवा सहजही रहेऊ ॥  
 भयो सिद्ध पिंजरा पुनि जबही । लेकर सुवा नायउ तेहि तबही ॥  
 रानी तबै पढावन लीन्हा । रामहि राम पढो मन दीन्हा ॥  
 तबही सुवा वचन अनुसारी । चेतहु राय प्रेत यम धारी ॥  
 इक दिन विछुरन सब सों होई । मोह प्रीति छांडो सब कोई ॥  
 बाणी यही कहत बहु बारा । दूजा वचन नहीं चित धारा ॥  
 राजा रानी कहत बिचारा । सूवा बोल कुबोल पुकारा ॥  
 बार बार हम ताहि पढावा । राम राम चित एक न लावा ॥  
 इक दिन राय अहेगहि गयऊ । लीला एक तहां हम कियऊ ॥  
 राजा ऐसे चेतत नाहीं । तबै बिचार कीन्ह मनमाहीं ॥  
 दीन्ही आज्ञा अग्निको जबहीं । महलनमहैं धधकि उठी सो तबहीं ॥  
 सून्यो रानी आगी लागी । सुत कलत्र ले रानी भागी ॥  
 भयो तेज अति अग्नि अपाग । जगत् द्रव्य सकलौ भण्डारा ॥  
 हीरा मोती लाल अपाग । पाट पटम्बर जर सब छाग ॥  
 जरे ऊंट अरु हस्ती वारा । रानी देख कीन्ह बड शोरा ॥  
 राव साज वस्तु सब जरई । हाहा रानी रोवत फिरई ॥  
 और जरे औरों जर जाई । सुवा जरे हम बड दुख पाई ॥  
 बारह वर्ष सुवा को भयऊ । सुवा जले मम प्राणहि गयऊ ॥  
 राव शिकार ते फिरी अयऊ । देख्यो राजा सब जरि गयऊ ॥  
 राजा बूझे रानी बाता । मोसों कहो सुवा विख्याता ॥  
 पिंजरा सुवा जरा कै बांचा । सोई वचन कहो मोहिं सांचा ॥  
 यह सुनि रानी रोवन लागी । जरयो सुवा भयो मोर अभागी ॥  
 सुनिके राय मोह बड लायी । सकल लोग कहैं लीन्ह बुलाई ॥  
 खोजो सुवा जाव सब कोई । देखत ताहि हर्षित मन होई ॥  
 सुनतहि लोग चले बहु धाये । डारेउ जल तब अग्नि बुझाये ॥

अवर सकल भये जर क्षारा । पिंजरा कहँ लागी नहिं झारा॥  
 पिंजरा भीतर सुवा रहायी । बोलत उहै वचन चितलायी ॥  
 राजा रानी देखत धावा । हाथ सुवा गहि अंक लगावा ॥  
 राजा रानी करै विचारा । यह तो कर्ता सिरजन हारा ॥  
 रानी राव चरण लपटाये । नगर लोग सब देखन धाये ॥  
 विनती राय कीन्ह तेहि वारा । सुनहु सुवा तुम वचन हमारा॥  
 बारह वर्ष रहे हम पासू । अपनो मता कहो निज आसू ॥  
 कै तुम करता पुरुष विदेही । कारण कौन धरी यह देही ॥  
 द्रव्य जरैकी चिन्ता नाही । यह संशय व्यापा घटमाहीं ॥  
 सबी जग्यो कछु नहिं वांचा । तुम्हरी देह लगी नहिं आंचा ॥  
 तातें तुम हम चीन्हा स्वामी । सत्य कहो भो अन्तर्यामी ॥

सुवा वचन ।

बोले सुवा कहे सुन राजा । चेतहु नाँतर होत अकाजा ॥  
 युगन युगन जग आयो राया । तुम्हरे काज लोक तें धाया ॥  
 तैं राजा बड मूर्ख गँवारा । तातें हम यह ख्याल पसारा ॥  
 हम वट तर तुम द्वारे आई । कहेउ सगुनिया खबर पठाई ॥  
 तब तेहि राजा मारण धावा । भाग सगुनिया हमलग आवा ॥

साखी ।

धाय सगुनिया आयउ, खबर कही हम पास ॥

वेगी तहां ते हम चले, सरवर कीन्ह निवास ॥

चौपाई ।

तेहि क्षण क्षितिया जल कहँ आई । लीला एक तहां हम लाई ॥  
 सरवर भीतर गागर थम्भा । आगे डार धर ध्यान अरम्भा ॥

१ आशा । यहां आशय सिद्धांतसे है अर्थात् राजा पूछता है कि तुम्हारा सिद्धांत क्या है सो मुझसे कहो । २ हो । ३ नहीं तो ।

साखी वचन ।

एते ख्याल न चेतैऊ, तोहि बांध्यो यमराज ॥  
नाम राय गहो तुम, ना तरु होय अकाज ॥

चौपाई ।

जीव काज आये तुम द्वारा । तुम अचेत नहिं चेत भुवारा ॥  
सुवा भेष हम महलन आवा । रत्न जडित पिंजरा तुम लावा ॥  
राम राम तुम मोहि पढाई । हम कहै राय चेत यम आई ॥  
अगमवचनको गम नहिं कीन्हा । यहिविधितो हम परचो दीन्हा ॥  
इतना ख्याल कीन्ह यहि जागा । तौऊ न चेतहु बडे अभागा ॥

राजा बंग वचन ।

छंद-धाय राजा चरण गहे तुम पुरुष सिरजनहार हो ॥  
हम देह नर अज्ञान हैं प्रभु हंसनायक सार हो ॥  
आदि अंत अनादि पुरुष भाग बड दर्शन दियो ॥  
करब आज्ञा शीश धरि हम आय अव सब हर लियो ॥  
सोरठा-कहो आपनो नाम, हंस वरण अब कीजिये ॥  
कौन द्वीप तुम गांव, सुवा भेष तजि रूप धरु ॥

सतगुरु वाक्य-चौपाई ।

सुवा भेष तजि भयो निनारा । ततक्षण रूप आपनो धारा ॥  
सुनहु वचन तुम राय हमारा । सत्यलोक तैं हम पगु धारा ॥  
नाम कबीर हमारा होई । तोकहैं बोधन आयो सोई ॥

राजा बंग वचन-चौपाई ।

देहु मुक्ति मोहि नाम गोसाई । हर्षित भयो रंक की नाई ॥  
पृथ्वी तज हम लोकहि जायें । आदि पुरुष के दर्शन पायें ॥  
ततक्षण राजा दूत पठाई । भांति भांति सोनार बोलायी ॥  
कंचन महल बनायो राजा । शोभा ताहि अधिक छबि छाजा ॥

कंचन केर सिंहासन आही । हीरालाल लगे बहु ताही ॥  
 लाय सिंहासन तहां धरावा । छत्र चँदोवा सुभग तनावा ॥  
 साहेब लेय तहां बैठायो । रानी राय चरण लपटायो ॥  
 राजा औ दश रानी जानो । चतुर पुत्र तिन केर बखानो ॥  
 पुत्री पांच रूप अति शोभा । देख स्वरूप ताहि मन लोभा ॥  
 हीरादे जेठी तेहि रानी । कंचन झारी जल भरि आनी ॥  
 दूजी कनकदे तेहि नाऊं । माथ नवाय बैठे ढिग आऊं ॥  
 तीजी सुन्दरदे चलि आई । साहिब माथे फूल चढाई ॥  
 चौथी मणिकदे भल होती । ज्यों तारागण चमके ज्योती ॥  
 पंचम सत्य कुँवरि है नाऊं । हाथे पंखा वायु डुलाऊं ॥  
 छठवीं रानी लक्ष्मी नावा । चन्दन अगर घीसि करलावा ॥  
 रुक्मादे सप्तम जो रानी । मधुर वचन बोलत शुभ वानी ॥  
 सोनादे आठों चलि आई । साहिब चरन पलोदन लाई ॥  
 मुक्तिदेइ नवमी कर नामा । तिन सतगुरु कहँ कीन्ह प्रणामा ॥  
 दशवीं सनकदे तेहि नाऊं । पग पग अन्तर वन्दन आऊं ॥  
 ग्यारहवीं थी जनक कुमारी । साहिब सों विनती चित धारी ॥  
 द्वादश रत्नादे कह दीन्हा । पल पल चरण केरि रज लीन्हा ॥  
 त्रयोदश मदनदेइ तेहि नामा । देखत तासु लज्जित हो कामा ॥  
 साहिब सों सब प्रीति लगाई । भक्ति भाव इच्छा बहुताई ॥  
 त्रयोदश रानिन सो मत कियऊ । साहेब की गति जान न पयऊ ॥  
 प्रथमहि बेटी वरणि न जाई । हंस कुँवरि तेहि नाम कहाई ॥  
 दूजी बेटी रूप कुमारी । साहिब चरण गहे चित धारी ॥  
 तीजी मान कुँवरि तेहि नामा । दर्शन पाय भयो विश्रामा ॥

१ हीरादेवी का अपभ्रंश है देशी बोलीमें प्रायः स्त्रियोंके नामके साथ कुँवरि ओटेदेवी आदि शब्द लगेरहते हैं वही देवी शब्द बोलनेमें कहीं तो 'दे' कहीं 'देई' आदि हो जाता है ॥

चौथे तारा कुँवरि बखानी । गुरु चरणन में सो लपटानी ॥  
 पंचम कुशल कुँवरि तेहि जानी । बहुत स्वरूप अहहि बड ज्ञानी ॥  
 पुत्री पांच सुरति इक जाना । आगे कहूं पुत्र परमाणा ॥  
 चार पुत्र राजाके आगर । पांचों सुरति एक मत नागर ॥  
 प्रथमहि वत्सराज तेहि नाऊं । साहिब ऊपर चँवर ढराऊं ॥  
 दूजे कक्षराज तेहि नाऊं । सुमति सुधर्म वसे तेहि ठाऊं ॥  
 तीजे मेघराज बड ज्ञानी । पल यल चरण वन्द गुरु आनी ॥  
 चौथे तेजराज अब भाषो । साहिब केर चरण अभिलाषो ॥  
 चारौ चरण वन्दना कीन्हा । साहिब दर्श हर्ष चित लीन्हा ॥  
 आठ बहू तब ही चलि आई । साहिब चार कंठ हिय लाई ॥  
 येते जीव सुमति सब देखा । तासों तब हम बचन विशेषा ॥  
 तुम तो राव सुमति चितलावा । लघु दीरघ जीवन समुझावा ॥  
 तुम तो होहु थान सब लेहू । सुरति निरति चरणन चितदेहू ॥  
 राजा तबहि सिखावन माना । चौका सजकर कीन्ह प्रणामा ॥  
 चन्दन घिस अरु महल लिपाई । अतर कपूर सुगन्ध धराई ॥  
 छत्र जडाऊ अति तहँ सोहा । दीवाल गिरी देखत मन मोहा ॥  
 मणिन जडित सिंहासन आई । मेवा अष्ट युक्ति सों लाई ॥  
 गज मोतिन की चौक पुराई । कंगूरा सु हजार बनाई ॥  
 पीताम्बर धोती तहँ आना । साथ हात के पान प्रमाणा ॥  
 तीन हाथ तिन की चकराई । श्वेत मिठाई तहां धराई ॥  
 हस्ती सम नरियर अस्थूला । एता कहूं के तोहि मूला ॥  
 आरति साट कंगूरा करिया । चौका मध्य लाय सौ धरिया ॥  
 साहब बैठ सिंहासन जबही । जगमग ज्योति भई अति तबही ॥  
 ततक्षण साज लोक से आवा । अनहद बाजे तहां बजावा ॥  
 पुत्री पुत्र बहु सँग रानी । राय समेत बंदगी ठानी ॥

हाथ नारियल सबहिन लीन्हा । साहिबके आगे धर दीन्हा ॥  
 कीन्ह प्रणाम दंडवत लाई । बार बार चरणन लपटाई ॥  
 बहुत भांति सो चौका धारा । अनहद बाजे बाज अपारा ॥  
 तिनका तोरेउ जल तब लीन्हा । सीख पान सबहिन कहूँ दीन्हा ॥  
 अभी भक्त राजा भल कीन्हा । भक्ति शिकारी मनमहँ दीन्हा ॥  
 सकल जीव कीन्हे परनामा । अब साहिब सुधरे सब कामा ॥  
 छंद-अति प्रेम राजा कीन्ह तब जब पाय पान परवान हो ॥  
 गद्गद गिरा तन पुलक होई तब विनय अस्तुति ठान हो ॥  
 हंस नायक परम लायक आय प्रभु दर्शन दियो ॥  
 काग पलट मराल कर भव सिन्धु बूडत गहि लियो ॥  
 सोरठा-सतगुरु चरण मयंक, चित चकोर नृप निरखही ॥  
 कीन्ह मोह निश्शंक, जरा मरण दुख मिट गयो ॥

सतगुरुवचन-चौपाई ।

राय वंग भल करनी लावा । राज गुमान सकल विसरावा ॥  
 अधम चाल सब दीन छुडाई । हंस चाल धर लोक सिधाई ॥  
 ऐसी भक्ति करे जो प्राणी । हंस होय निज शब्द समानी ॥  
 तीस जीव इकतीसो राजा । पाये नाम सुधर तिन काजा ॥  
 छन्द-अमिय अंश जे पाय हंसा ते चले सतलोक हो ॥  
 ताहि काल न बाट रुंधत पहुँचहीं निःशोक हो ॥  
 ताहि बहिया संग चल इकतीस हंसन ले चले ॥  
 आर्य लोकमें पाय वासा पुरुषके दर्शन लये ॥  
 सोरठा-देख्यो लोक भुआर, सतगुरुके चरणन परे ॥  
 पाये रूप अपार, षोडश रवि लग अंग जित ॥  
 इति श्रीअम्बुसागरे तारणयुगकथावर्णनं नाम सप्तमस्तरंगः ॥

## अथ अष्टमस्तरंगः ।

अखिलयुगकथावर्णन ।

चौपाई ।

धर्मदास कह बन्दी छोरा । जीव अधर्मी कुटिल कठोरा ॥  
 पतित उधारण नाम तुम्हारा । पतित जीव कहँ पार उतारा ॥  
 तुम्हरी दया पाय प्रभु स्वामी । नर नारी होवे सुख धामी ॥  
 अब कछु आगे भाषु सुनाऊ । सतपुरुष जनि मोहि दुराऊ ॥  
 आगे ज्ञान कहो अनुसारी । जा विधि जीवन कीन्ह उबारी ॥  
 कौन शब्द ले कालहि मारो । कौन शब्द ले हंस उबारो ॥  
 कौन शब्द ले राखव पासा । कौन शब्द होवे जिव वासा ॥

सतगुरु वचन—चौपाई ।

शब्द मलंग काल गहि मारा । सार शब्द ले जीव उबारा ॥  
 सुरति डोरि ले राखव पासा । आर्य शब्द होवे जिव वासा ॥  
 चार शब्दका भाषेउ भेदा । धर्मदास तुम कीन्ह निषेदा ॥  
 बहुतक साथ जायँ डहकाई । जीव काल कर भेद न पाई ॥  
 योगाभ्यास जब उतपति कीन्हा । सर्व बीज प्रमाणा दीन्हा ॥  
 सर्व बीज प्रमाणा आई । चौदह हाथ थान लंबाई ॥  
 अठारह गागर केर जस गोरा । ता दिन नरिअल अस हम मोरा ॥  
 युगहु अखिलदशलाख बखानी । द्वादश में जीवें भल प्राणी ॥  
 नाम धनुष मुनि ऋषी रहाई । तहां जाय दीन्हा तिन पाई ॥  
 गति तिन का भाषू परतीती । त्रयोदश सहस गये युग बीती ॥  
 ऊर्द्धमुखी पंचाग्नि तपाये । प्राण पुरुष ब्रह्मांड चढाये ॥  
 बैठे देह नयन अति क्षीणा । साहिब देख बहुत बल हीना ॥  
 तब हम ताहि बूझ चितलाये । केहि कारण तुम कष्ट कराये ॥

का कर सेवा केहि जप करहु । काहि ध्यान अन्तर्गत धरहु ॥  
सो तुम मोहि सुनावहु भाई । अगम अगोचर भेद बताई ॥

धनुषमुनिवचन—चौपाई ।

मूल वस्तु कारण तप कीन्हा । अगम पुरुष सेवा चित दीन्हा ॥  
अजपा जाप जपू चित लाई । सत अभ्यन्तर ध्यान धराई ॥  
मर्कडेय प्रलय हो जाहीं । धनुष मुनी देखत हम ताहीं ॥  
उतपति प्रलय देखा बहु बारा । कीन्ह कष्ट नहिं सांच बिचारा ॥

सतगुरु वचन—चौपाई ।

कीन्ह तपस्या कष्ट अपारा । तुम तो चोर कालके चारा ॥  
तप तें राज नर्क है भाई । फिर फिर जन्म धरै भव आई ॥  
बहुतक तपी भये संसारा । अन्तकाल यम कीन्ह अहारा ॥  
मूल भेद तुम नाहिन जानी । कष्ट करत देही भव आनी ॥  
वह साहिब नहिं कष्ट बतावा । सुखदाई हो अग्नि बुझावा ॥  
होइ निष्कर्म नाम आराधो । सत्य भक्ति सतगुरु की साधो ॥  
अमर लोक महुँ पहुँचो जाई । आर्य पुरुष के दर्शन पाई ॥

धनुषमुनिवचन—चौपाई ।

तुम तो औरलोक रचिलीन्हा । तप अरु योग झूठ सब कीन्हा ॥  
और पुरुष तुम तहां बतावा । हमरे चित एकौ नहिं आवा ॥  
लोक तुम्हारा मोहीं दिखाऊ । बचन तुम्हार सत्य मन आऊ ॥  
तब मैं गहूँ तुम्हारे चरणा । छूटे मोर जरा अरु मरणा ॥

सतगुरु वचन—चौपाई ।

यह सुनि साहिब चले रिंगाई । लेकर मुनि कहँ लोक सिधाई ॥  
देखि दृष्टि हंसनकी पांती । युथ युथ हंस बैठे बहु भांती ॥

धनुषमुनि—वचन चौपाई ।

तब मुनि गहे धनी के पाऊ । अब साहब मोहि लोग दिखाऊ ॥

सुफल जन्म भयो कृतारथ । पावन कीन्ह भयो शुभ स्वारथ ॥  
चलहु गोसाईं अब हम चीन्हा । देहु पान आपन कर लीन्हा ॥  
सतगुरुवचन-चौपाई ।

मुनि कहँ लाय वेग भवसागर । ततक्षण शब्द गहे चित नागर ॥  
माला ताहि गले मँहँ दीन्हा । श्रवण शरवणी बांधन लीन्हा ॥  
यमसों तिनका तोरेउ भाई । हृदय शुद्ध करि पान पवाई ॥  
धनुष मुनी लीन्हा परमाना । चाखत पारस कीन्ह पयाना ॥  
काया त्याग जु दीन्ह रिंगाई । पुरुष लोक मँहँ बैठे जाई ॥  
हँसहि हंस मिले सब संगी । शब्द पाय भये निर्मल अंगी ॥  
धनुषमुनिवचन-चौपाई ।

चूक भूल अब मेढु हमारा । तुम जीवनके तारणहारा ॥  
यह तो लोक अक्षय तुम राखा । अगम निगम तेहिगम नहिं भाषा ॥  
सुर नर मुनि कोई नहिं पावे । तीन लोक जिव काल फँसावे ॥  
दुनिया माया मोह फँदाना । राग रंग निशिबासर साना ॥  
तबहुँ न चेतत मूढि गँवारा । पकडि पकडि यम मारे धारा ॥  
निर्गुण नाम भाषि तुम दीन्हा । ताहि नाम बिरलै कोइ चीन्हा ॥  
तीनों गुणका बडा पसारा । जप तप योग यज्ञ मन धारा ॥  
पुरुष भक्ति कोई नहिं जाने । आप आपको ब्रह्म बखाने ॥  
घट मँहँ काल विषय बट पारा । कैसे हंस पहुँचे दरबारा ॥  
लोक लोक भाषें नर लोई । लोक मर्म जाने नहिं कोई ॥

दोहा-धन्य नारि अरु नाम धनि, सर्व बीज निजआन ।

जा प्रतापतें लोक मँह, पहुँचे पुरुष ठिकाण ॥

चौपाई ।

नरियल उत्पति मोहिं सुनाओ । कैसे वृक्ष ताहि निर्माओ ॥  
सतगुरु-वचन ।

निगम दीपते नरियल आया । दीप संदली गुप्त रहाया ॥

जलखंडी तहँ वासा लीन्हा । तहँवां जाय गम्य हम कीन्हा ॥  
 जलखंडी कहँ मारा जबहीं । ताहि देह मथि काढेउ तबहीं ॥  
 तब नरिअल हम आन जुगावा । यत्न यत्न सों वृक्ष बनावा ॥  
 प्रथम वृक्ष फल लागे पांचा । सत्य सत्य मानो तुम सांचा ॥  
 पहिलहि फल बांधो कहँ आवा । धर्मदास के हाथ धरावा ॥  
 जम्बु द्वीप थान बैठाई । देहि पान तब पन्थ चलाई ॥  
 उत्तर दिश तिनकी गुरुवाई । तहां चाल रुग्वेद चलाई ॥  
 वंश बयालिस तिन के सारा । हंसन खेद उतारहि पारा ॥  
 कोटि वाणी हम तिनकहँ दीन्हा । जगत जीव कहँ निर्मल कीन्हा ॥  
 दूजे फल बंकेजी पावा । करनाटक महँ पंथ चलावा ॥  
 प्लास द्वीप तिन की गुरुवाई । बहुत जीव तिन्ह लेहि बचाई ॥  
 पूरव दिशा ताहि बैठारा । यजुर्वेद तहँ मता पसारा ॥  
 वंश सताइस तिन के जाना । वाणी तिन टकसाल बखाना ॥  
 कर्नाटक इक शहर अपारा । तहां बैठि तिन ज्ञानपसारा ॥  
 तीजे फल मणिपुर तब जाई । सहतेजी के हाथ धराई ॥  
 शाल्मलि द्वीप ताहि करनामा । पश्चिम दिशा अहै सो ठामा ॥  
 तहवां मता अथर्वण वेदा । सात वंश तिन कहँ निषेदा ॥  
 बीजक वाणी पंथ चलावे । सार शब्द दे हंस बचावे ॥  
 चौथा फल दरभंगा जाई । राय चतुर्भुज हाथ धराई ॥  
 कुशा द्वीप तिनका बिस्तारा । दक्षिण दिशा ताहि बैठारा ॥  
 साम वेद मार्ग तहँ जानी । षोडश तिन के वंश बखानी ॥  
 वाणी मूल ताहि हम दीन्हा । बहुत हंस आपन कर लीन्हा ॥  
 पांचाँ फल हैं हमरे पासा । लोक बैठि चौका परकाशा ॥  
 वाणी आर्य हंस कहँ दीन्हा । सकल हंस आपन कर लीन्हा ॥  
 जब जब हम संसारहि आये । वाणी लाय हंस मुक्ताये ॥  
 वीरा नाम हंस जिन पावा । सोई हंस लोक पहुँचावा ॥

यही नाम है अगम अपारा । जाने जीव उतर भवपारा ॥  
 छंद-जगत घर घर गुरु कहावत कालके बन्धन परे ॥  
 शिष गुरु दोई डाल फांसी विषम सरवर ते जरे ॥  
 चार गुरु संसार हैं यम तासु निकट न आवई ॥  
 ताहि गुरु जिन पाव वीरा काल शिर तेहि नावई ॥  
 सोरठा-बहुत गुरु संसार, ठांव ठांव भर्मत फिरे ॥  
 जाग्रत गुरु हमार, ताहि काल देखत डरे ॥

इति श्रीअम्बुसागरे अखिलयुगकथावर्णनं नाम अष्टमस्तरंगः ।

### अथ नवमस्तरंगः ।

विश्वा युग कथा वर्णन ।

धर्मदासवचन-चौपाई ।

यह सुनि धर्मदास विहँसाना । धाय धरे जिमि रंक समाना ॥  
 धरे न धीर चक्षु चल वारी । बार बार चरणन चित धारी ॥  
 भयो अधीन अधिक मनमोहा । तरुण उदय पंकज जिमि सोहा ॥  
 मोहि अधम तुम कीन्ह कृतारथ । और गुरु लागे केहि स्वारथ ॥  
 आगे आनी मोहिं सुनाओ । आपन जान मोहिं चेताओ ॥

सतगुरु वचन-चौपाई ।

धर्मदास बूझो तुम ज्ञाता । सकल कथा भाषू विख्याता ॥  
 भासूं विश्वा युग परभाऊ । पुरुष आज्ञा निकट बुलाऊ ॥  
 आर्य द्वीप पुरुष रहिवासा । ततक्षण गये तहां हम पासा ॥  
 तहँवां जाय गम्य हम कीन्हा । आदि पुरुष जहँ बैठक लीन्हा ॥  
 आसन मार बैठे तहँ आपू । दर्शन पाय छुटा त्रै तापू ॥  
 कला अनन्त रूप अधिकाई । कोटिन रवि एक चिकुर लजाई ॥  
 प्रथम अवाज पुरुष अनुसारा । माया पास जाय शठहारा ॥  
 तीन लोक माया कर वासा । जीवन फांस डारि करे त्रासा ॥

ताकी खबर लेहु तुम जाई । तीन लोकमहँ अदल चलाई ॥  
शठहारवचन-चौपाई ।

तब शठहार विनय उठ कीन्हा । साहब आज्ञा हम कहँ दीन्हा ॥  
माया लग हम जाय सिधाई । वस्तु आपनी कहो बुझाई ॥  
होय अधीन जाहि तें माया । सो साहब कीजे मोहिं दाय़ा ॥

पुरुष उवाच-चौपाई ।

शब्द हमार धरौ चितलाई । यही तत्त्व माया मुरझाई ॥  
जाहु वेगि जनि लावहु बारा । जीवन कष्ट भयो अधिकारा ॥  
शठहार वचन-चौपाई ।

परम पुरुष जब वचन उचारा । ततक्षण मै माया के द्वारा ॥  
ताहि द्वार गण बैठि रहाये । माया सों तब जाय जनाये ॥  
देवी ततक्षण लीन्ह बुलाई । तब शठहार बैठ तहँ जाई ॥  
देवावचन-चौपाई ।

बूझे देवी मन चित लायस । कौन देश शठहार रहायस ॥  
कौन पुरुष तुम कहँ पठवा । सो तुम हम कहँ वचन सुनावा ॥  
शठहार वचन-चौपाई ।

कह शठहार सुनो तुम माया । सत्यलोक तें में चलि आया ॥  
पुरुष मोहि ढिग तोर पठाये । तुम तो चपल सकल जग खाये ॥  
जीव जोर कर धर धर मारा । फन्द लगाय पकर यम द्वारा ॥  
जबहि दशहरा आवे भाई । भैंसा बकरा तहां कटाई ॥  
फन्द अनेकन सकल फँदाना । मूरख जीव शब्द नहिं माना ॥  
तुम तो आहु पुरुष के चोरो । पल महँ बांध रसातल बोरो ॥  
देवी वचन-चौपाई ।

कह देवी तू कैसे बोले । शक्ति हमारी घर घर डोले ॥  
पुरुष तुम्हार में नाही डरऊं । तीनों लोक पांव तर धरऊं ॥

तुम कहँ माहँ चापूँ हेठा । तीन लोक पसरे मम देठा ॥  
 ब्रह्मा विष्णु हाथ सब मोरे । शिव सनकादिक केवल तोरे ॥  
 चौंसठ लाख कामिनि होई । मेरे अंग बैहर सब कोई ॥  
 तुम रे दुष्ट कहां चलि आवा । केहि कारण तें पुरुष पठावा ॥  
 नाम गुनाम कहो शठिहारा । हमरे चित डर नाहिं तुम्हारा ॥  
 खपर हाथ मम भुजा अनन्ता । अपने वश कीन्हो भगवन्ता ॥  
 हम पर धनी और नहिं आना । तीन लोक मम नाम बखाना ॥  
 तुम क्या गर्व करहु रे भाई । कहौ लोक में देहु खसाई ॥  
 तुरतहि रूप अनेकन धारों । लोक तुम्हार रसातल डारों ॥

शठहार वचन-चौपाई ।

कह शठहार सुनो श्री मया । काहे तुम मति गयी भुलाया ॥  
 जा दिन आदि अन्त नहिं जोती । ता दिन जन्म कहां तुव होती ॥  
 पुरुष अकार कहो जग जानी । शब्द डोरि तेहि बांधो तानी ॥  
 कामिनी तोहि कहँ जरि क्षारी । सकल हंस कहँ लेहुँ उबारी ॥  
 आदि पुरुष कहँ तू कस मोटी । छोडेउ पुरुष काल उर भेंटी ॥  
 अस जिन जानहु सकल हमारा । देहों शाप होइ हो जरि क्षारा ॥  
 हम तो सत्यलोक तें आवा । देवी तुम्हारा ज्ञान हिरावा ॥  
 कीन्ही पुरुष तबै तुम भयऊ । तीनहु लोक बख्श तोहि दयऊ ॥  
 तें जानसी सब मैं ही कीन्हा । पुरुष नाम तुम नाहिं न चीन्हा ॥  
 अलख निरंजन देवी राता । विधि हरि हरका करि है घाता ॥  
 महा प्रलय होवे तेहि बारा । तब जर वर सब होवे क्षारा ॥  
 तीनों लोक प्रलय तर जायी । तब अद्या तुम कहा रहायी ॥  
 उन संतों कहँ कौन गुमाना । जिनका चलत जगत में पाना ॥  
 आदि पुरुष तुम्हरे हैं ताता । अद्या भयो निरंजन भ्राता ॥  
 ताहि तात को छोडहु संगी । भ्राता जार कीन्ह अरखंगा ॥

ताहि रंग ते गई भुलायी । छोडेउ पुरुष जार मन लायी ॥  
निशि वासर कीन्हा पिय नेहा । कामरूप कामिनि मति देहा ॥  
तुच्छ बुद्धि नारी तुव बाता । यही चाल जग नार समाता ॥

देवी वचन ।

यह सुनि माया बहुत लजाई । धरि सिंहासन तब बैठाई ॥  
वचन हमार सुनो शठहारा । नाम जपे तेहि हंस उबारा ॥  
हम पुत्री पुरुष के आहू । शब्द डोर हंसन ले जाहू ॥  
जो कोउ नाम तुम्हार सुनाये । शीश हमार पांव दे जाये ॥  
चौसठ युग हम सेवा कीन्हा । पृथ्वी बरूश पुरुष मोहिं दीन्हा ॥  
तीन लोक हम मरदो माना । कैसे हंसा लोक पयाना ॥

सतगुरुवचन—चौपाई ।

कह शठिहार सुनो तुम बाता । सकल जीव कीन्हेउ तुम घाता ॥  
जो कोउ जीव हमारा होई । ताके निकट जाय जिनि सोई ॥  
जा घट शब्द हमार समाये । ता घटकाल निकट नहिं आये ॥

देवी वचन—चौपाई ।

तात वचन लाये शठि—हारा । को मेटे यह वचन अपारा ॥  
हठ कर वचन मेटि मैं डारा । तौ हम भयी लोक तें न्यारा ॥  
जे जिव पुरुष नाम चित राता । ताहि हंस नहिं बोल बताता ॥  
अंक तुम्हार पान जो पाई । देवी देव देख शिर नाई ॥  
भीतर करता बहुत गुमाना । ताकर जीव करब हम हाना ॥  
गुरुसों मन चित अन्तर राखा । साधु सन्तु सों दुर्मति भाखा ॥  
ते जिव हमरे खपर भराई । बार बार चौरासी नाई ॥  
नाम तुम्हार कोई नहिं जाना । सकल जीव हमही लपटाना ॥  
मुक्त मुक्त भाषत सब प्राणी । मुक्तहि नाम प्रमाण सुजानी ॥  
मो कहैं और न जानत दूजा । निश दिन हमचित तुम्हरी पूजा ॥

सार नाम जिन पाव तुम्हारा । सो पहुँचे पूरुष दरबारा ॥  
ताहि हंस हम रोकब सोई । द्रोही पुरुष केर हम होई ॥

शठहारवचन—चौपाई ।

विश्वा युग चर्चा हम कीन्हा । या नर तन गिर जीवन दीन्हा ॥  
तूर बराबर नरिअल जाना । चार हाथ लम्बा रह पाना ॥  
हाथ दोय करके चकराई । ऐसा युग हम पान बनाई ॥  
बीस लाख युग आयु बखाना । वर्ष सहस मानुष तन जाना ॥  
अडसठ हाथ उँचाई होई । ऐसे नर सकलों सब कोई ॥  
सात सहस पाय जो पाना । सत्य शब्द निश्चय कर माना ॥  
पुरुष दर्श तिन जीव कराई । देवी वचन कहा समझाई ॥  
छंद—यह चरित कर शठहार ततक्षण पुरुषा के दर्शन लहे ॥

कीन्ह माया वाद बहु विधि चरण हमार निश्चय गहे ॥

विश्व युग में जाय कै हम हंस कीन्ह उबार हो ॥

सहस सात जिव पाय बीरा आय लोक मँझार हो ॥

सोरठा—पुरुष कीन्ह अवाज, भल तुम कीन्हेउ अंश मम ॥

हंसन के सरताज, माया गर्व नशायऊ ॥

इति श्रीअम्बुसागरे विश्वायुगकथावर्णनं नाम नवमस्तरंगः ।

## अथ दशमस्तरंगः ।

अक्षयतरुणयुग कथा वर्णन ।

धर्मदास उवाच—चौपाई ।

धन्य भाग हम सतगुरु भेंटा । भवसागर का संशय मेटा ॥  
कथा अनूप मोहि समझाई । सुनत चित्त मम अति सुख पाई ॥  
अमृत वचनमोहि अतिप्रियलागा । चरण कमलतू हिय अनुरागा ॥  
तुम पद पंकज मुकुर सुधारा । अमिय वचन सुनकलिमलटारा ॥  
वचन तुम्हार आहि अति पावन । कीन्ह सनाथ मोहि मन भावना ॥

तीनहु तपन बुझायहु मोरी । होय दयाल कहो कुछ ओरी ॥  
युग युग जीवन दर्शन दीन्हा । अधम जीव पावन कर लीन्हा ॥  
दास जानि कहिये प्रभुराई । धर्मदास टेके तब पाई ॥

सतगुरु वचन—चौपाई ।

धर्मदास तुम मति के आगर । पुरुष अंश तुम अहहु उजागर ॥  
सुकृत अंश अहो धर्मदासू । हंसन के तुम हौ सुखरासू ॥  
तुम बूझो जीवन के काजा । गहि सत शब्द छोडि कुललाजा ॥  
जो तुम बूझो हंसन धामा । पुष्प द्वीप पूरुष विश्रामा ॥  
अभ्यन्तर हो कीन्ह निवासा । तहवाँ पूरुष वचन प्रकाशा ॥  
तब ज्ञानी कहँ लीन्ह बुलावा । आयसु देइ संसार पठावा ॥  
अक्षय तरुण युग दीन्ह रिंगाये । चलि जलरंग लागिहम आये ॥  
तिनमें एक असंख्य उँचाई । अक्षय द्वीप जहँ कूर्म रहाई ॥  
वाही कूर्म ध्यान तहँ धरई । प्रथम पुरुष का सुमिरन करई ॥  
द्वादश पालंग ताहि शरीरा । कच्छ रूप धरि बैठे नीरा ॥  
सोलह माथा चौंसठ पाई । तहँवां पहुँचे जाय गुसाई ॥

कूर्म उवाच ।

बूझे कूर्म कौन तुम आहू । सत्य वचन सो मोहिं सुनाहू ॥  
कै तुम आप पुरुष चलि आये । अंश रूप धरि वर्ण छिपाये ॥  
हम पताल बैठे जल माहीं । ध्यान पुरुषकी सदा कराहीं ॥

ज्ञानी वचन—चौपाई ।

ज्ञानी कहे कूर्म सुनु बाता । तुमसों सत्य कहूँ विख्याता ॥  
हंसन हेत काज उपराजा । पुरुष मोहि पठये जिव काजा ॥  
तब हम आय यहां पग दीन्हा । द्वीप तुम्हारा देखन लीन्हा ॥  
कहो पताल करे अब बाता । तुम सब जानत हौ उतपाता ॥  
कौने द्वीप कमल का फूला । कौन द्वीप कालका मूला ॥

कौन द्वीप जलखंडी वासा । कौन द्वीप माया परकाशा ॥  
 कौन द्वीप कूर्म बैठारा । कौन अंश तहँ करत विहारा ॥  
 दोहा—आदि अंत तोहि बूझेउ, कहो कूर्म समझाय ॥  
 सत्य सत्य मोसों कहो, चित संशय मिट जाय ॥

कूर्म वचन—चौपाई ।

कहे कूर्म बूझो भल ज्ञानी । द्वीप द्वीप भाषूं सहिदानी ॥  
 पूरुष द्वीप कमलका फूला । तहँवां भयो काल अस्थूला ॥  
 जलखंडी रह संदल द्वीपा । भव माया हो रही समीपा ॥  
 अक्षय द्वीपमहँ हम भला रहिया । इकइस खंड पिण्ड पर धरिया ॥  
 हमरे नीचे गहरु गँभीरा । तहवाँ डोरी शत अस्थीरा ॥  
 तेहि चौकी बैठे जल रंगू । जल शोभा तहँ उठत तरंगू ॥  
 हम जाना सो दीन्ह बतायी । सोइ कथा हम भाष सुनायी ॥

ज्ञानीवचन—चौपाई ।

ज्ञानी कहे कूर्म सों बाता । और मोहिं भाषो विख्याता ॥  
 तुम पर काल कीन्ह कस रचना । सो मोहिं कूर्म कहो दृढ बचना ॥  
 कूर्मवचन—चौपाई ।

तुम कहँ ज्ञानी सब कुछ सूझा । जानहु आदि अन्त मोहि बूझा ॥  
 चार अंश जलखंडी कीन्हा । रचना ताहि अपन करलीन्हा ॥  
 हम पर मीन रूप निरमावा । ता पर कच्छ रूप बैठावा ॥  
 कच्छ पीठ पर कीन्ह बराहू । आगे सहस फणहि तहँ आहू ॥  
 तापर महि की रचना कीन्हा । गिरिसुमेरु तब भारतेहि दीन्हा ॥  
 दशहु दिशा दिग्पाल लगाई । सूंड लाय तिन मही उठाई ॥  
 एतक कालहि रच्यो प्रचंडा । महिमा सात द्वीप नव खंडा ॥  
 लेत करौंटा जेहि पल हमहीं । नीच गगन ऊंची भुवि तबहीं ॥

उलट पलट परलय हो जाई । तीन लोक जलमाहिं समाई ॥  
हम तो चीन्ह पुरुष तुम आपू । देहू पान मिटे सन्तापू ॥

चौदह यम का नाम ।

ज्ञानी वचन—चौपाई ।

इतना सुन ज्ञानी विहसाई । अब तुमसों कुछ नाहिं छिपाई ॥  
अक्षय पान वीरा लिख दीन्हा । शीशहि नाय कूर्म तब लीन्हा ॥  
अस्तुति कीन्ह बहुत चितलाई । धन्य भाग मोहिं दरश दिखाई ॥  
तुम तो पुरुष आहु अविनाशी । सत्य गुरू सत्यलोक निवासी ॥  
ज्ञानी दीन्ह वचन तोहि बारा । कूर्म चाल जेहि जीव मँझारा ॥  
ताहि जीव हम लोग पठाउब । सोई हंस काल नहिं पाउब ॥  
चल ज्ञानी तहँवां ते आगे । चौदह यम बैठे अनुरागे ॥  
कलिमल द्वीप नाम तेहि राखा । कच्छप लोग वेद तेहि भाषा ॥  
साहब तहां जाय गम कीन्हा । चौदह यम सों बोलन लीन्हा ॥  
कौन कौन तुम यम रे भाई । आपन नाम कहो समझाई ॥

यम वचन—चौपाई ।

तब यम आपन नाम बतावा । एक एक करि वर्ण सुनावा ॥  
प्रथमही नाम कहा मृत्यु अंधा । दूजा यम है क्रोधित अंधा ॥  
तीजा यम दुर्ग अभिमाना । चौथे मन मकरन्द बखाना ॥  
पांचों नाम अहै चितचंचल । छठां यम तेहि नाम अपरबल ॥  
सप्तम अन्ध अचेत बताई । अष्टम कर्म रेष यम आई ॥  
नवमें अग्नि घंट वरियारा । दशवें कालसेन विकरारा ॥  
ग्यारहे मनसा मूल बताई । द्वादश यम भय भीत रहाई ॥  
त्रयोदश नाम तालुका ताही । सुर संहार चतुर्दश आही ॥

ज्ञानीवचन—चौपाई ।

चौदह यमन पकड़ी हम लीन्हा । बहुत पुकार करन तिन्ह कीन्हा ॥

तब देखा दूतन कहँ जाई । चौरासी कहँ कुण्ड बनाई ॥  
 कुण्ड कुण्ड बैठे यमदूता । देत जीव कहँ कष्ट बहूता ॥  
 तहां जाय हम ठाढ़ रहावा । देखत जीव विनय तब लावा ॥

कंडहार वचन—चौपाई ।

मारत जीव करे बडशोरा । बांध बांध कुण्डनमें बोरा ॥  
 लाख अठाइस पडे कडिहारा । बहुत कष्ट तहँ करत पुकारा ॥  
 हम भूले स्वारथ के संगी । अब हमरे नाहीं अर्धगी ॥  
 हम तो मरत अग्निके झारा । अग अंग सब जरत हमारा ॥  
 कौन पुरुष अब राखे आई । करत गुहार चक्षु ढल जाई ॥

ज्ञानी वचन—चौपाई ।

करुणा देख दया दिल आवा । अरे दूत त्रास भास दिखावा ॥  
 जीव अचेत भये अज्ञाना । गहे शब्द अति कीन्ह गुमाना ॥  
 चौरासी दूतन कहँ बांधा । शब्द डोर चौदह यम सांधा ॥  
 तब ज्ञानी सबहिन कहँ मारा । तुम तो जीवन के वटपारा ॥  
 हमरे साधन तुम भरमावा । पल पल सुरति जीव बगड़ावा ॥  
 गहि चोटी दूतन घिसियाये । यम अरु दूत विनय तब लाये ॥

दूत वचन—चौपाई ।

चूक हमारि बरूश कर लीजे । मन माने तस आज्ञा कीजे ॥  
 हम तो धनी कहे जस कीन्हा । सो हम वचन मान शिर लीन्हा ॥  
 अब नहिं हंस तुम्हार विगारव । नाम गहे सो लोक सिधारव ॥  
 विनती कीन्ह करे बड शोरा । हमतो नाहिं करत कछु जोरा ॥  
 जस चाहो कीजे तस ज्ञानी । हम तो हाथ तुम्हार बिकानी ॥

ज्ञानी वचन—चौपाई ।

तुम ज्ञानी बहुतै हरपाई । दूतन बन्धन छोरो जाई ॥  
 फल इक जीवन सुख कर दीन्हा । तब संसार गमन हम कीन्हा ॥

अक्षय तरुण युग हम चलि आवा । अक्षय नाम वीरा जिह लावा ॥  
जीव आय बोधेउ भवसागर । वीरा दीन्ह हंस भये आगर ॥  
पांच सो लाख पाय परवाना । सकल हंस लै लोक सिधाना ॥

छन्द-हंस लै ज्ञानी चले जहँ पुरुष आप विराजहीं ॥  
हंस हंसन कर कुतूहल पुरुष केवल गाजहीं ॥  
अमर पुरुष विनय इक हम मार कालहि अति बली ॥  
तुम पद्म पद परताप तें यम दूत गहि हम दलमली ॥

सोरठा-हंसन कीन्ह उबार, लै आयो अमरापुरी ॥

पाये दरश तुम्हार, हंस रूप तिनको भयो ॥

इति श्रीअम्बुसागरे अक्षयतरुणयुगकथावर्णनो नाम दशमस्तरंगः ।

## अथ एकादशस्तरंगः ।

नन्दियुगकथा वर्णन ।

चौपाई ।

धर्मदास हर्षित मन कैसे । गगन तरु पंकज लख जैसे ॥  
तुम पराग सर मज्जन करही । पुनिविनश्रमभवनिधिकहँ तरही ॥  
हमहि दयाल दयाकर ऐसे । जिमि कराल पारस मिलतैसे ॥  
वचन तुम्हार सुधाको सागर । श्रवण करत निर्मल मति आगर ॥  
श्रवण करत कलिमल इमिभागा । चन्दन विरह वचन फणित्यागा ॥  
चितवन तुम्हरे पद अब लागू । आशा उभयन है अनुरागू ॥  
आगे औरहु वर्णन कीजे । तृषावन्त कहँ अमी चखीजे ॥

सतगुरुवचन—चौपाई ।

धर्मदास तुम मति के पूरा । तुम कहँ देखि काल हो दूरा ॥  
हम तुम सो इमि रहें समार्ई । सुमन सुगंध रहा जिमि छाई ॥

पुष्प सुगन्ध प्रगट किमि होई । धर्मनि सुनो युक्ति इक सोई ॥  
 प्रथमहि द्रव्य देय तिल लाये । कंकर नाखि ताहि फटकाये ॥  
 देह कष्ट पुनि मीज बहूता । सेतु बनाय छुडाये छूता ॥  
 कलिमल हरण ताहि करडारा । मज्जन करतेहि निकर सुधारा ॥  
 उत्तम कुम्भ सु तहां मैगाये । प्रीति अनेक सुमन तिल लाये ॥  
 पुष्प तिलो संगम जब कीन्हा । कोल्हू माहि पिरावन लीन्हा ॥  
 नाम फुल्लेल वासन संगी । एतक कष्ट सहा दुख अंगा ॥  
 अससिख सतगुरु पद अनुरागा । माया मोह सकल चित त्यागा ॥  
 तिनहू तपन बुझायो जाका । काल अब जिव रोमन बांका ॥  
 तुम हो सुमन घ्राण हम जैसे । शब्द बनावत तिल जिव तैसे ॥  
 शब्द कहे सतगुरु जी भेंटे । गुरू संग शिष वास लपेटे ॥  
 कोल्हू भक्ति गुरू की आगर । सुरति समय पहुँचे सुख सागर ॥  
 ऐसी चाल सीख जो आवा । हँसत राम लग वासा पावा ॥  
 युग युग थीर भये नहि आवत । सतगुरु हाथ पान जिव पावत ॥  
 युग नन्दी हम दीन्ह पयाना । पुरुष आयुसु जगत सिधाना ॥  
 कौंच द्वीप महँ पहुँचो जाई । तहां काल दधि सिंध बनाई ॥  
 तहँवा एक हंस निर्वाणा । तिनसो गोष्टि तहां हम ठाना ॥  
 बैठि अरम्भ गुफा अनुरागा । माया मोह छोड चित भागा ॥  
 नाम गुप्त मुनि तहाँ रहाये । दृष्टि मूँदि ध्यानहि मन लाये ॥  
 तहँवा निकट बैठ हम जाका । खोल चक्षु मुनि हम कहँ ताका ॥  
 बूझे मुनि तुम को हो भाई । आपन नाम कहो समझाई ॥  
 सुन्दर रूप अधिक अति शोभा । देखत रूप उठत अति लोभा ॥  
 अंग अंग देखा चमकारा । शोभितमनु जिमि अगम अपारा ॥  
 कोटि वर्ष इहवां तप कीन्हा । ऐसा रूप न कबहूँ चीन्हा ॥  
 अब तुम कहो आपनो नामा । कौनेहि देश वसो केहि ग्रामा ॥

सतगुरुवचन—चौपाई ।

तब हम मुनिको भेद बतावा । सत्यलोकको संदेश सुनावा ॥  
 सुनत संदेश अती मन लोभा । देखन सत्यलोक कीन्ह सोछोभा ॥  
 बहुत विनती गुप्तमुनि लाये । बहुतहिं विलखि वचन सुनाये ॥  
 तब हम ताहि बहुविधि जांचा । सब विधितेहि पायो मैं सांचा ॥  
 ज्यों ज्यों जाचों त्यों त्यों लोभे । छूटे यमफाँस बढे बहु शोभे ॥  
 बहुविधि ताही शब्द सुनावा । काल जाल सब दूर बहावा ॥  
 देखि अधीन शब्द मुनि पागा । तब ले चलयो ताहि वहि जागा ॥  
 प्रथम दिखायो मान सरोवर । सकल कामिनी एक बरोबर ॥  
 चारभानु जिमि अंग लपेटा । करहिं कुतूहल युथ युथ भेंटा ॥  
 मान सरोवर देखि तडागू । सिढी सिढी रवि शशि जनु लागू ॥  
 ता जल देखत जीव जुडाना । उठत तरंग पूर जिमि भाना ॥  
 तहँवां कामिनि मज्जन करई । मज्जन करत रूप बड धरई ॥  
 कामिनि खंड महा अति पावन । युथ युथ बैठ राग तहँ गावन ॥

गुप्तमुनिवचन—चौपाई ।

यह छवि देख कीन्ह मन लोभा । व्याकुल भयो चित्त लखि शोभा ॥  
 नाना भांति फूल फुलवारी । जिमि उडुगण रवि रचि बैठारी ॥  
 देखि दृष्टि पद तब लिपटाना । जस जल पाय मीन मन माना ॥  
 करहु अनुग्रह अब नहिं जाइब । ऐसो ठांव बहुर नहिं आइब ॥

सतगुरुवचन—चौपाई ।

जब लग पुरुष नाम नहिं भेंटी । तब लग काल त्रास महिं मेटी ॥  
 अब तुम चलो आपने ठामा । पावहु आदि पुरुष विश्रामा ॥  
 सतगुरु मुनि आये जब तहियां । गुप्त मुनी आपन रह जहियां ॥  
 गुप्त मुनि निगुर्ण सर्गुण भाषा । हे प्रभु श्रवण सुनत अभिलाषा ॥  
 कौन ज्ञान ते तुम कहँ पायब । सतगुरु ताहि मुक्त फरमायब ॥

## सतगुरुवचन-चौपाई ।

निर्गुण ज्ञान मुक्ति का वासा । सर्गुण ज्ञान शरीर प्रकाशा ॥  
 सर्गुण ज्ञान खबर हम पावा । निर्गुण ज्ञान मोहिं चित भावा ॥  
 सर्गुण नाम अनन्त बतावत । निर्गुण माहिं रहित घर पावत ॥  
 सर्गुण नाम सकल संसारा । निर्गुण है इक नाम हमारा ॥  
 सर्गुण नाम काल भरमावे । निर्गुण नाम हंस घर आवे ॥  
 सर्गुण निर्गुण रहे अकेला । ताके संग गुरू नहिं चेला ॥  
 मारग झीन सुनो मुनि ज्ञानी । मकरतार लगावत तानी ॥  
 गुप्त मुनी को चौका कीन्हा । लिखिके पान तुर्त हम दीन्हा ॥  
 युगनन्दी की आयु बखानी । एक करोर वर्ष परमानी ॥  
 मानुष आयु सहस रह तीनी । तहां गुप्त मुनि भये अधीनी ॥  
 सतगुरु मुनि ले चले डोरी । टूटत घाट अठासी कोरी ॥  
 देखत मुनि हंसन युथ आवा । सकल साज मंगल भल गावा ॥  
 अनहद बाजा बाजन लागू । मंगल भांति भांति उठ रागू ॥  
 हंस परछि संग कर लीन्हा । धन्य हंस सतगुरु भल चीन्हा ॥  
 विषय वासना छोड भगीता । चरण प्रताप काल तुम जीता ॥

छन्द-जलहलखंडी अति विहंडी त्रिगुण दाहत अति बली ॥  
 रूप माया खंडी काया जीव सब गहि दलमली ॥  
 वीर हंसा भाग वांचे नाम जिन शिर नग गहीं ॥  
 काल त्रास न ताहि व्यापत पुरुष के दर्शन लहीं ॥

सोरठा-पाय पुरुष अवाज, हंस दर्श ततक्षण भये ॥

बैठे हंस समाज, भुक्तत निर्भय है सकल ॥

इति श्रीअम्बुसागरे नन्दीयुगकथावर्णनो नाम एकादशस्तरंगः ।

## अथ द्वादशस्तरंगः ।

हिंडोल युग कथा वर्णन ।

चौपाई ।

धर्मदास बोले मृदु वाणी । तुम तो आप पुरुष हो ज्ञानी ॥  
 भल हम श्रवण सुना विख्याता । मृदुल मंजु पद गहु मुनि ज्ञाता ॥  
 पंकज गहिविनु श्रमभव तरिया । और जीव काल मुख परिया ॥  
 इक मुख पद्म का वर्णन करऊं । समझ विचार अपन चितरहऊं ॥  
 जस गूंगा सपना लखि आवा । सुमिर सुमिरमन मन पछितावा ॥  
 पाय राज अरु हस्ती घोरा । मन्दिर कनक नारि सँग जोरा ॥  
 भयो भोर तब देख निहारी । कहँवां राज पाट अरु नारी ॥  
 समझ समझ मन व्याकुल होई । कहँवां राज पाट सुख सोई ॥  
 कासों कहूं विपति को बाता । ऐसे मन मन मनहिं सिहाता ॥  
 जिन जाना तिनहीं पहिंचाना । दूजा नहिं और हित माना ॥  
 जाना तिन जेहि तुम्हरी दाया । प्रबलकाल तेहि निकट न आया ॥  
 रहे अचेत चेत नहिं कीन्हा । वचन सुधा पावन करलीन्हा ॥  
 कथा कहो अरु हंसन राई । ज्यों युग जीव कीन्ह मुकताई ॥

सतगुरु वचन—चौपाई ।

द्वीप असंख्य जु लोक निवासा । जहँवां हंसन केर विलासा ॥  
 आयुस पुरुष कीन्ह जब ज्ञानी । वेग जाव जग जीवन आनी ॥  
 मस्तक नाय चले तेहि बारा । पहुँचे वेग आये संसारा ॥  
 युग हिंडोल महँ आये आपा । भाषेउ शब्द आर्य की छापा ॥  
 हम तो जीवन सत्य बखाना । जान बूझिजिव भांति भुलाना ॥  
 हम तो सत्य शब्द मनमाने । जीव झूठ जिन मर्म न जाने ॥  
 ता कहँ कहा करब रे भाई । सत्य ज्ञान चित नहिं समाई ॥  
 वाणी मुक्ति जीव नहिं पावत । फिर फिर काल ताहि डहकावत ॥  
 कैसे जीव होय निश्शंका । माया कठिन फांस तेहि वंका ॥

धर्मदास हम घर घर डोला । कोई जीव नाहिं मुख बोला ॥  
 बूझो सतो शब्द कहूँ हँमारा । विष अमृत है एक मँझारा ॥  
 सो तोहि भाषो हो टकसारा । विष अमृत का करु निर्वारा ॥  
 हंस होय तेहि न्यारा करहु । नातरु काल जाल महँ परहु ॥  
 अमृत पाय अमर जब होई । ऐसा अगम शब्द है सोई ॥  
 पानी सम अमृत जिनि जानो । शब्द अमीहम ज्ञान बखानो ॥  
 शब्द बाण है कठिन अपारा । ज्ञानी पण्डित करहु विचारा ॥  
 शब्द चोट है राजत राजू । शब्द चीन्ह सुधरत जिव काजू ॥  
 शब्द डोर हंसा निश्शंका । शब्द डोर हो हंसा रंका ॥  
 शब्दहि ते सब रचना कीन्हा । शब्द पुरुष मुख भाषण लीन्हा ॥  
 सोई शब्द हंसा वर पावा । शब्द गहे ओ लोक सिधावा ॥  
 मूरख जीव शब्द नहिं माना । शब्द सुनत मोहि झगरा ठाना ॥

साखी-मूरख शब्द न मानहीं, धर्म न सुने विचार ।

सत्य शब्द नहिं खोजई, सो जावे यमद्वार ॥

चौपाई ।

हम तो घर घर करी पुकारी । विरला हंस कोइ कीन्ह सम्हारी ॥  
 युग हिंडोला लिये प्रमाणा । सात लाख जिव शब्द समाना ॥  
 बीता चार पान रे भाई । गगरा सम नरियल तब आई ॥  
 युग आयुर्बल बरस पचीसा । नर आयुर्बल सत्ताईसा ॥

छन्द-दीन्ह लिखि जेहे अंक जीवन ते चले हम साथ हो ॥

ताहि जीवन काल गांसत पांव दे यम माथ हो ॥

सात लाख ले हंस पहुँचो पुरुष चरण मिटाइया ॥

रूप भयो तेहि विषद मंजुल अक्षय तरु फल पाइया ॥

सौरठा-वर्ण मनोहर अङ्ग, अधिक रूप छवि ताहिको ॥

बैठे द्वीप सुरंग, हंस हंस युत्थ जयमगे ॥

इति श्रीअम्बुसागरे हिंडोलयुगकथावर्णनं नाम द्वादशस्तरंगः ।

## अथ त्रयोदशस्तरंगः ।

कंकवत युग कथा ।

चौपाई ।

धर्मदास विनती बहु करहीं । सतगुरु चरण शीश ले धरहीं ॥  
 राउरबचन रवि किरण विपंगा । मम संशय यामिनि करु भंगा ॥  
 सूझि परचो प्रभुचरित अनूपा । तुम तो पुरुष एकही रूपा ॥  
 ज्ञान कथा मोहि कहु समझाई । सुनत चित्त हिय अति हर्षाई ॥  
 जीव उबारे काटे बन्दा । होय सच्चिदानन्द आनन्दकन्दा ॥  
 और कथा कहिये अब सोई । साहब मोहि न राखो गोई ॥  
 युग लीला कीन्हा जस स्वामी । सो कहिये मोहि अंतर्यामी ॥

सतगुरु वचन—चौपाई ।

धर्मदास बूझो मन भावो । सो चरित्र अब वरणि सुनावो ॥  
 नाम गुप्त मुनि रहा पताला । रूप बनाय बैठे तहँ काला ॥  
 जीवन काज गुप्त भये नासी । जैसे छिपकर बैठत फांसी ॥  
 नाल जगाय फन्द बहु डारी । ऐसी रचना काल पसारी ॥  
 शब्द रूप आप परकाशा । तब चलि गये गुप्त मुनि पासा ॥

गुप्तमुनि वचन—चौपाई ।

अंश गुप्त मुनि पूछत बाता । कौन देश तुम कहाँ रहाता ॥  
 काकर अंश कहाँ चलि आये । सो तुम मोहिं कहो सति भाये ॥  
 इहां गम्य कोई नहिं लम्भा । तुमैं देखि मोहि भयो अचम्भा ॥  
 शब्द सतोतर सत्तहि भाषो । हम सो गोय नहीं कछु राखो ॥

साखी—तबै गुप्त मुनि पूछही, कह समरथ अर्थाय ॥

अंश यहां के नाहिं तुम, कौन देशते आय ॥

ज्ञानी वचन—चौपाई ।

ज्ञानी कहै गुप्त मुनि वचना । आय पताल देखन तुव रचना ॥

सुनत श्रवण बहु दिना बिताई । तुम ऋषि वर पुरुष पठवाई ॥  
 सत्य लोकतें हम चल आयो । द्वीप तुम्हार देखन मन लायो ॥  
 हम तुम एक नाल के आहीं । काहे भूल गये मनमाहीं ॥  
 पिछली खबर विसर तुम भयऊ । इहवां आय गुप्त मुनि भयऊ ॥  
 अब तुम मोहि मिलो हितकारी । हम हैं तुम्हरे सिरजन हारी ॥  
 लेहु पान तुम तजो गुमानो । पुरुष वचन सत्य करि मानो ॥

गुप्तमुनिवचन ।

सुनत गुप्त मुनि एतिक वानी । बहुत कोप तब मन महुँ आनी ॥  
 कौन मंत्र ले सिरजउ भाई । कौन नाम तुम मोहि धराई ॥  
 खबर साठ युग की हम जाना । मोसों अधिक कहां है पाना ॥  
 सत्य वचन तुम भाषहु नागर । तब तुम जाहु यहां तें आगर ॥  
 हम ते भये बडे तुम ज्ञानी । मोक्ष मुक्ति तुम अंश न जानी ॥  
 सप्त पताल खबर हम जाना । तुम अस कोटिक फिरहिं भुलाना ॥  
 प्रलय होय जब धुन्धूकारा । शब्द ख्याल की तरै तुम्हारा ॥  
 नहिं जलथल जब गगन निवासा । नहिं तब रहे मंदिर कवलासा ॥  
 सुरमुनिऋषि नहिं सहस अठासी । तब तुम कहां होत हो वासी ॥

साखी—इतने दिन तुम गुप्त थे, उपजा नहीं शरीर ॥

उतपति परलय नाहिं थी, तब तुम कहां कबीर ॥

ज्ञानीवचन ।

आदि अन्त तब ना हता, नाहिं न बोल शरीर ॥

शब्द स्वरूपी बीरवा, तहँ हम वसे कबीर ॥

चौपाई ।

ज्ञानी कहे गुप्त मुनि बाता । जीव अनेक कीन्ह तुम घाता ॥  
 कर अब तुम कहँ हम धरि पावा । पकरि बांध यमलोक चलावा ॥  
 युगयुग साठ कथा अनुसार । युग असंख्य हमही विस्तारा ॥

हमही लोक कीन्ह मन भावन । षोडश अंश भये तब पावन ॥  
इतना कहि अस बोले वाणी । कौन पुरुष तुम कहँ उतपानी ॥  
तुम तो मोहिं नाहिं पहिचानी । कहै कबीर बोल अभिमानी ॥

गुप्तमुनि वचन-चौपाई ।

एतक सुनत कोप चित बाढा । उठ ज्ञानी के सन्मुख ठाढा ॥  
नाहिं भय भीर राख तेहि बारा । कीन्ह युद्ध बहु भांति अपारा ॥

ज्ञानी वचन-चौपाई ।

सुर मुनि तेज पुरुष परतापू । काल पछार पांव तर चापू ॥  
कालहि मार खंड दो करिया । गहि फेंका यम द्वारे परिया ॥  
यम औ दूत देख सब धावा । धनी हमार मारको आवा ॥  
मार काल जब कीन्ह विध्वंसन । अपने वद कर लीन्हे हंसन ॥  
युग कंकवत आवत अनुसारा । तादिनका यह कथू पसारा ॥  
पैंतिस लक्ष आयु युग होई । मानुष लक्ष वर्ष जिय सोई ॥  
असी हाथ नर केरि उंचाई । ग्यारह हाथ पान लंबाई ॥  
हस्ती सम नरियल बन्धाना । युग की कथा कहेउ परमाना ॥

छन्द--काल मर्दन कर निकन्दन दूत गंजन कीन्ह हो ॥

आनन्द कन्दन मेटि फन्दन लोक वासा लीन्ह हो ॥

पुरुष के तव दरश कीन्हे चरण वन्दन हिय लहे ॥

तब नाम पद परतापते रिपु जीत विनती अब कहे ॥

सोरठा--पुरुष कर गहि लीन्ह, बैठो ज्ञानी अंश मम ॥

काल निकन्दन कीन्ह, हंस काज भल युक्ति कर ॥

इति श्रीअम्बुसागरे कंकवतयुगकथावर्णनो नाम त्रयोदशस्तरंगः ।

## अथ चतुर्दशस्तरंगः ।

चारोंयुग कथा वर्णन ।

धर्मदासवचन—चौपाई ।

धर्मदास बोले हितकारी । विनय करत चक्षुन चले वारी ॥  
 विलखत वदन ढरत दोउ नयना । धर धीरज तब बोले वयना ॥  
 जीवन काज मुक्त भल कीन्हा । मर्दन धर्म रसातल दीन्हा ॥  
 भयो अधीन काल तेहि बारा । गयो लोक हंसन रखवारा ॥  
 काल त्रास जीवन सब दाही । धन्य भाग जो तुम्हरी वाही ॥  
 जो पद गहे रंक अरु भूपा । वायस गति हो हंस अनूपा ॥  
 तिन की संगति गंजित कीन्हा । जरा मरण गत हर्षित लीन्हा ॥  
 पंकज गह पद जीव अनाथू । युग युग बैठहि अमर के साथू ॥  
 धर्मदास कर जोरे ठाढे । शब्द सुनत हर्षित चित बाढे ॥  
 अब प्रभु और कहो परभाऊ । चारों युग कर कथा सुनाऊ ॥

सतगुरु वचन ।

धर्मदास बूझेहु बहु बारा । सो अब कहूँ खोल भंडारा ॥  
 सत्य नाम सत्ययुग हम नामा । जीव उबार पठाये धामा ॥  
 बहुतक जीव पाय परवाना । जो चीन्हा सो लोक सिधाना ॥  
 सतयुग आयू सत्रह लाख्वा । सहस अठाइस जेहि युग भाषा ॥  
 मानुष आयुर्बल वर्ष इक लाख्वा । इकइस हाथ ऊंच तन भाखा ।  
 धर्मदास तुम चित अभिलाषो । दूजा युग त्रेता अब भाषो ॥  
 नाम मुनीन्दर हंस उबारा । काल शीश के मर्दनहार ॥  
 तहां शब्द बहु भांति पुकारा । हंसन खेय उतारेउ पारा ॥  
 द्वादश लक्ष छानवे हजार । इतना युग का आयु विचारा ॥  
 मानुष आयु सहस दश जानी । हाथ चतुर्दश केर प्रमाणी ॥  
 तीजे द्वापर कहूं बखानी । पुरुष अवाज जीव वरि आनी ॥

करुणा मय नाम धराये । जीव हेतु भवसागर आये ॥  
 घर घर जीवन कहा संदेशा । जो मानो तेहि मिटे कलेशा ॥  
 युग आयुर्बल कहूँ विचारा । साठ लाख चौसठ हज्जारा ॥  
 मानुष आयुस सहस्र प्रमाना । सात हाथ ऊँचा अनुमाना ॥  
 चौथा कलियुग कथा सुनाऊँ । जग महाँ आय कबीर कहाऊँ ॥  
 चार लाख बत्तीस हजार । एते कलियुग आयु प्रसारा ॥  
 वीसहि सौ नर आयु बखानी । हूँठा हाथ देही परमानी ॥  
 तात मात आगे सुत नासू । कोई दश बीस कोई वर्ष पचासू ॥  
 बहुत होय जिव तुरत विनासू । काहू नाशे गर्भके वासू ॥  
 युग परमाण आयुर्बल गायो । कलियुग आयु कछु नहिं भायो ॥  
 कलियुग भक्ति विरल नर करई । अन्तकाल सुधि जान न परई ॥  
 खबर करे जिव लागे तीरा । सत्य पुरुष का पावे वीरा ॥  
 उलट चाल कलियुग का नाशू । उलटी रहनी गहन परकाशू ॥  
 गुरु सन्मुख सेवा शिष्य करिहैं । मुख पीछे गुरु निन्दा धरि हैं ॥  
 साधुन निन्दा साधू करि हैं । साधु मेटि आप अब धरि हैं ॥  
 साधुन वस्तु साधू ले लेई । नहीं साधू कहँ साधू देई ॥  
 कलियुग साधू बहुत गुमाना । काल पुरुष का मर्म न जाना ॥  
 घट महाँ काल वसे हंकारा । कलियुग साधू विरल सम्हारा ॥  
 साहब चीन्हे घर को जावे । विन चीन्हे भव भटका खावे ॥  
 साहब घट घट साधुन पासा । साधुन करचो नाहिं विश्वासा ॥  
 साधू देख साधु बहु जरई । तातें चौरासी में परई ॥  
 कलियुग साधू मुग्ध बखाना । सत्य ज्ञान विरले पहिचाना ॥  
 हाथ नारियल लिखनी पाना । आप गुरू बन जगत बखाना ॥  
 ताहि जन्म यमपुर हो वासू । पकड पकड यम नावें फांसू ॥

ज्ञान कथै अरु झगरा लावे । कछु झूठ अरु सांच मिलावे ॥  
 चौका काज साल रम रहै । सत्य गुरुको देखत डहै ॥  
 दोय चार घर बोधे जाई । पेल गुरु गुरू आप कहाई ॥  
 वंश नाम नहिं पावे पाना । झूठहि साखी कथा बखाना ॥  
 चौका बैठ करे बहु शोभा । नारी देख करे बहु लोभा ॥  
 देखे नारी सुन्दर नैना । ताहि दूर ते मारे सैना ॥  
 जाहि अपन वद जाने भाई । ताहि प्रसाद देहि अधिकाई ॥  
 गर्व गुमान महन्त कहावे । भक्ति करन को हरबल धावे ॥  
 वंश विनाजिन भक्ति जु कीन्हा । यम शिर ऊपर दावा दीन्हा ॥  
 सबको जूठन सब कोई खाई । केतौं स्वाय मुक्ति नहिं पाई ॥  
 जाके पार शब्द है सारा । ताहि खोज ना करे लवारा ॥  
 धर्मदास जिन अंश न बूझा । ताको ज्ञान दृष्टि का सूझा ॥  
 सूक्ष्म सूक्ष्म पाय प्रसादा । ताकर जन्म गयो बहु वादा ॥  
 इक छूछा इक पूरा होई । महा प्रसाद लेवतै सोई ॥  
 छूछे जीव सकल संसारा । पूरे हैं निज वंश तुम्हारा ॥  
 तिन पारस जब हंसा पावत । काल बली तेहि निकट न आवत ॥  
 पावे हंस वंश सहिदाना । देखत यम तेहि दूर डराना ॥  
 शब्द पाय कैसे कै जानब । पुरुष नाम वंशहि गहि आनब ॥  
 शब्द केर पारख इमि करई । वीरा हंस पाय निस्तरई ॥  
 वीर हंस जाते तर जाई । सोई नाम हंस लव लाई ॥  
 निःअक्षर वाकी है बाटा । विना वंश नहिं पावे है घाटा ॥  
 अक्षर है बहुत अनन्ता । निःअक्षर तुम खोजो सन्ता ॥  
 अक्षर उभय काम नहिं सरई । गह निःतत्त्व वंश चित धरई ॥  
 यह अक्षर साधू जिन जाना । सो साधू चित हमरे मन माना ॥  
 और शब्द बहु गहै बनायी । सो साधू चित नहिं समायी ॥

और शब्द बांधे परतीती । एक नाम विन यम नहीं जीती ॥  
 अक्षर एक मोहि कहँपावे । औ अक्षर सब ज्ञान बतावे ॥  
 धर्मदास सुन वचन हमारा । कलियुग साधुन के व्यवहारा ॥  
 मुक्ति मुक्ति साधूजन करई । कहो मुक्ति कैसे निर्धरई ॥  
 एक नाम विन मुक्ति न पावे । कोटिन साधू यत्न करावे ॥  
 सार नाम की नाहिन आशा । कोटिन नाम करे विश्वासा ॥  
 दया धर्म औरन बतलावे । आपन साधू देख छिपावे ॥  
 साधू द्वारे तें फिर जायी । साधू रहनि नहीं चित आयी ॥  
 साधू तें साहब पहिचानी । अगम पंथ वहि साधु बखानी ॥  
 कलियुग साधु केर सुन मर्मा । आप बुडे औरन कह धर्मा ॥  
 देखी उलटी रीतिरे भाई । आपन बहे और समझाई ॥  
 ज्ञान ध्यान देखत जो करई । ताहि देख आपहि जलमरई ॥  
 देखी देख करै बहु योगू । छीजत काया बाढत रोगू ॥  
 शब्द हमार द्विपाये धरि हैं । करि अनीति बहु जगते डरिहैं ॥  
 आपन गहि हैं शब्द प्रतापू । सब विसरिहैं मंत्र औ जापू ॥  
 तुव वंशानते सुमिरन पैहै । शिषशाखाको नहीं बतलै हैं ॥  
 तिनते जो पूछन ऐहैं । अपनी भक्ति ताहि दिढै हैं ॥  
 कहिहैं ताहि सुनहु रे भक्ता । करहू मम सेव जो छूटे जगता ॥  
 वंश नाम ले जगको ठगिहैं । विषय विकारमें बहुविधि लगिहैं ॥  
 यम दूतन ते करि असनेहू । मम हंसन ते करिहैं द्रोहू ॥  
 द्रोह करन बहु युक्ति उपैहैं । लहे न दाव बहुत पछितैहैं ॥  
 लोभ देइ निज सेव दिढायी । चेला चेली बहुत बढायी ॥  
 पुनि तिन संग कुकर्म सो करिहैं । करि कुकर्म नरकमें परिहैं ॥  
 जो कोइ हंस शब्द मम गहिहैं । तिनको देखत मनही जरिहैं ॥  
 साधु महंत बहु भेषा धारी । करि हैं ठगई होय मिथ्याचारी ॥

उद्यम धन्धा कछु न सुहायी । भीखमांग सो पेट भरायी ॥  
 साधु संत के नाम ते मंगि हैं । करिहैं विषयकालमग पगि हैं ॥  
 साधु संत को देखत द्वारे । धरिहैं द्वेष मनहिं मन भारे ॥  
 जो कोइ मम शब्द परगटै हैं । तिन संग सो रार बढै हैं ॥  
 अस साधु महंतनकी करनी । केतिक सुनाऊँ तोही बरनी ॥  
 अम्बू सागर तुम सन भाखा । समझ बूझ तुम दिल महँ राखा ॥  
 धर्मदास जिन जानहु ज्ञाना । कलियुग केर चरित्र बखाना ॥  
 कहूँ पुकार चेत रे भाई । ना चेतै मम का बिगराई ॥  
 चेतै हंस आय है द्वारा । नहिं चेतै तेहि काल अहारा ॥  
 घर घर फिरि बोलत ललकारी । करे महन्ती दम्भ पसारी ॥  
 वंश नाम नाहि नहित जानी । आपन आपन मता बखानी ॥  
 ममता है जहँतहँ कलिब्यापू । नहिं ममता तहँ साहब आपू ॥  
 ममता मोह दूर कर डारै । सतगुरु वचन सत्य उर धारै ॥  
 आज्ञा मानै लगे जिव तीरू । रटत कहे हम सत्य कबीरू ॥  
 पुरुष निरंतर खोजो भाई । घट भीतर रह काल समाई ॥  
 काहू खोजत खोजत पावा । काहू खोजत जन्म गमावा ॥  
 काहू खोजत खोजत भयऊ । बहुतक खोज खोज मर गयऊ ॥  
 कलियुग भक्ति कठिन बहुताई । उलटि पलटिके पंथ नशाई ॥  
 कलियुग जीव चतुर ते नाशू । शब्द हमार न कर विश्वाशू ॥

छंद—कालचरित अपार धर्म न जीव कहा न मानी है ॥

बार बार पुकार सबसों सत्य भक्ति न ठानि है ॥

यही कठिन कराल विकट यम तेहि अति बली ॥

वचन हिय नहिं सत्य धारे जीव यमगहि दल मली ॥

सोरठा—करब लोक अब वास, पुरुष चरण उर भेंट अब ॥

हंसन हंस विलास, कलियुग पग नहिं धारऊँ ॥

धर्मदास वचनचौपाई ।

धर्मदास संशय चित आवा । बार अनेक विनय प्रभु लावा ॥  
 का अपराध जीव कलि कीन्हा । जाते तुम दर्शन नहिं दीन्हा ॥  
 युग युग आये जीवन काजा । अब कस त्रास कीन्ह यमराजा ॥  
 यम अन्तरघट घट सब फांसी । जीव अचेत कीन्ह इमि गांसी ॥  
 महा अधम पातक भर पूरा । शब्द तुम्हार होय अघ दूरा ॥  
 पुरुष नाम राव कीन प्रकाशा । जो नहिं कर्मतिमिरकहँ नाशा ॥  
 छन्द-तुम पद पराग अघ पुंज दाहन हंस सतमन धारनं ॥  
 पतित पावन नाम ध्यावन हंस किमि यम पावनं ॥  
 हंस नायक जिव सहायक अधम जिव पद पंकज गहे ॥  
 युग अनन्त न हंस लावहु काल कलि जिव किमि कहे ॥  
 सोरठा-युग असंख्य में आय, पुरुष लीला धारिके ॥  
 ऐसे हंस बचाय, उपेक्ष कर्म कहि किमि कहे ॥

सतगुरु वचन—चौपाई ।

धर्मदास तुम हंस नरेशा । सत्य पुरुष का कहूँ सन्देशा ॥  
 कलियुग काल बहुत बरिआरा । तातें पुरुष वचन अनुसारा ॥  
 पुरुष अवाज भई जग जानी । सुनो अंश तेहि कहूँ बखानी ॥  
 चार गुरू हैं जग कडिहारा । सुकृती अंश आदि अधिकारा ॥  
 बंकेज चतुर्भुज औ सहतेजी । सुकृती जग महँ चौथे भेजी ॥  
 जगमहँ नाम होहिं धर्मदास । जीवन ले राखे सुख वास ॥  
 अंश बयालिस हमरे आगर । जीवनकाज जाहिं भवसागर ॥  
 धर्मदास के प्रगटे जाई । नाम चूरामणि आप धराई ॥  
 तिनके हाथ शब्द टकसारा । पुरुष नाम दे हंस उबारा ॥  
 कलियुग यही नाम प्रतापू । पहुँचे लोक मिटे सन्तापू ॥  
 वंश बयालिस जग कडिहारा । देहि दान जिव उतरहिं पारा ॥

छन्द-करुणा रमण चित देखि दाया अचर वानी बोलेऊ ॥  
 जाहु ज्ञानी कीन्ह आयसु जिवन बन्धन खोलेऊ ॥  
 आय धर्महि मार ततक्षण कौल मह सों कीन्हिया ॥  
 वंश हाथन पान पावन ताहि हम नहिं लीन्हिया ॥

सोरठा-कौल कीन्ह धर्मराय, पुरुष दीन्हेउ वंश को ॥  
 काल पान जिन पाय, सो पहुँचे सुख सिन्धु कहँ ॥

धर्मदास वचन चौपाई ।

सुनतहि धर्मदास हरषाने । सतगुरु चरण धाय लपटाने ॥  
 वचन तुम्हार हिये हम धारा । चूरामणि है अंश तुम्हारा ॥  
 और कहो प्रभु दीन दयाला । हंसन नायक करो निहाला ॥  
 नागर वेलि कहँवां तैं कीन्हा । जाय अंक पुरुष कहँ दीन्हा ॥  
 ताकी आदि कहो मोहिं स्वामी । कृपा करो प्रभु अन्तर्यामी ॥

सतगुरु वचन-चौपाई ।

तुम तो बूझ कीन्ह बड अंशा । तुम्हरे चित का मेटू संशा ॥  
 नागवेलिका भेद बताऊं । अंक देय हंसन मुक्ताऊं ॥  
 कूर्म पीठ पर वेलि रहाया । तहँ तै नागवेलि हम लाया ॥  
 ताकर मूल दीन्ह संसारा । तुमसों धर्मनि कहूँ विचारा ॥

साखी-एक पान बरई का, हाटहि हाट बिकाय ॥

एक पान सतगुरु का, अमर लोक ले जाय ॥

धर्मदास तब भये सुनाथा । साहब चरण नवायो माथा ॥  
 अगम कथा भाष्यों प्रभुराई । दीन दयाल हंस मुक्ताई ॥

छन्द-धर्मदास कर जोरि कह मोहि पतित पावन कर लहै ॥  
 गदगद गिरा अतिपुलक सादर प्रेम वश पंकज गहै ॥

तुम वचन सुधा तडाग निर्मल ताहि बिच मन मीन हो ॥  
सब जीव यह अज्ञान कर्मी मोह वश नहिं लीन हो ॥

सोरठा-युग युग भवन सिधाय, आर्य लोक जिव लेगये ॥  
कलियुग पन्थ चलाय, हंसन मग अब भाषिये ॥

सतगुरु वचन-चौपाई ।

हंसन मग बूझो धर्मदासू । जो जिव पदगह होय निराशू ॥  
तन मन धनहिय मोह न राखे । सदालीन अस्तुति चितभाखे ॥  
हंस चाल रहे सदा अनन्दा । सो जिव बांचे यमके फन्दा ॥  
गुरुमुख निशिदिन आज्ञाकारी । निंदारूप न चित्त विचारी ॥  
गुरु निंदा क्षण इक चित व्यापू । ताकहँ काल करे बड दापू ॥  
हर्ष शोक चित नाहिन आवत । सदा लीन गुरु सुरति समावत ॥  
जस चकोर चन्दहि चित लावत । ना कहूँ सुरति न है बिसरावत ॥  
जैसे पंकज सर रह बासा । निसि बीते रवि उगै अकासा ॥  
दरस देख पंकज विकसाना । ऐसे हंस वँश चित आना ॥  
सत गुरु नेह जाहि चित आई । पाय अंक हिय सांच बसाई ॥  
धर्मदास मोकहँ जिमि पावा । तज धन धाम सकल बिसरावा ॥  
ऐसे संत वंस गहि चरणा । छूटे ताहि जरा औ मरना ॥  
एतक हंस वंस सहिदानी । धर्मदास मैं कहूँ बखानी ॥  
ताकहि यम छूवें नहिं पायी । गहि पद वंश लोक जिव जायी ॥  
आर्य लोक महँ जग मग ज्योती । हीरालाल लाग जहँ मोती ॥  
श्वेत हंस बैठे जहँ पांती । कंचन खम्भ बने बहु भांती ॥  
पुरुष डोरि हंसा चढ पावे । जीवन जन्म ताहि मिटि जावे ॥  
सुरति अचिन्त है नाम हमारा । जिन्हें जान जिव उतरे पारा ॥  
मूल वस्तु हम दीन्ह बतायी । जाते हंस नष्ट नहिं जायी ॥

पुरुष रूप बरनो अति पावन । एक चिकुर रविकोटि लजावन ॥  
 हंस रूप शोभा बहु भांती । षोडश भानु हंस की क्रान्ती ॥  
 मुक्त अमर मन जहवां बासा । दर्शन पाय होत अघ] नाशा ॥  
 ऐसे घर साधुन वर कीन्हा । पहुँचे लोक वंश जिन चीन्हा ॥  
 आदि अन्त सागर मय भाषा । अम्बू चाख सुरति जिमि राखा ॥  
 भवनिधि उतर पारं जिव जायी । यम शिर पांव देय घर आयी ॥

छन्द-अम्बु सागर ग्रन्थ में जहाँ कमल बखानियां ॥  
 सोरठा कंमोद फूले वार अति चौपाइयां ॥  
 यह कथा पावन अति सुहावन अमी सर वर्णन करों ॥  
 जेहि करहु मज्जन सन्त सज्जन अर्थ वीची चित धरो ॥

सोरठा-खंड मनोहर घाट, साखी सिढियां लाइये ॥  
 चले हंस यह बाट, सुख सागर सुख सों लहे ॥

इति श्रीअम्बुसागरे चारोंयुगकथावर्णनो नाम चतुर्दशस्तरंगः ।  
 इति समाप्तोऽयं ग्रन्थः ।

### उपसंहार ।

सोरठा-अम्बु सागर ग्रन्थ भो पूर, बूझो संत विवेक करि ॥  
 शब्द परखे सो शूर, परखि शब्द सत पद गहे ॥  
 चौपाई ।

काल चरित बहु अगम अपारा । भांति २ जग शब्द पसारा ॥  
 दुख छुडावन कहैं ललचावे । ललचन जीवहि फन्द लगावे ॥  
 पहले कहे सुकृत की बातू । पीछे लावे आवन घातू ॥  
 पहले दिठावे भक्ति औ मुकती । पीछे लगावे आपनि युकती ॥  
 यह सब जानो यमकी बाजी । जेहिमा भूले पण्डित काजी ॥

देह लोभ सब जीव फँसावे । अपन महिमाकरि भक्ति बढावे ॥  
 कहँ लगि कहौं कालकी रचना । एकहि एक मिले नहिं बचना ॥  
 पक्षपात लगाइ जीव बिगोवे । सत्य पद छूटि नरक सो जोवे ॥  
 याते गुरु पारख विस्तारा । जेहि पाये जिव होयहि न्यारा ॥  
 हंस होइ अपने पद जोवे । तत्य गुरू के शरण सु होवे ॥  
 दोहा—परखो संतो शब्द को, त्रिविधि भेद विचार ॥  
 काल संधि झाँई लखी, पावो शब्द मति सार ॥  
 दोउ प्रकार पारख करो, बानी खानि विचार ॥  
 गुरु पद तब पाइहो, रहै न भ्रम लगार ॥  
 भ्रम छुटे जब जीवका, उभय अनन्द सो पाय ॥  
 काल देशते निकसिके, सत्य लोक को जाय ॥  
 इति ।





सत्यसुकृत, आदि अदली, अजर, अचिन्त, पुरुष,  
मुनीन्द्र, करुणामय, कबीर, सुरतियोग, संतायन,  
धनी, धर्मदास, चूरामणिनाम, सुदर्शननाम,  
कुलपतिनाम, प्रमोध गुरुबालापुरी, केवल  
नाम, अमोल नाम, सुरतिसनेही नाम, हक्क  
नाम, पाकनाम, प्रगट नाम, धीरज  
नाम, उग्र नाम, दया नामकी  
दया, वंश व्यालीसकी दया ।  
अथ विवेकसागरप्रारम्भः ।



प्रथमस्तरंगः ।

चौपाई ।

ज्ञान दीप बड जानु सुजाना । सुख न बहुत संतोष समाना ॥  
सत्य व्रत सम व्रत न कोई । ज्ञान समान गुरु नहिं होई ॥  
नहिं विचार ते औरू सारा । बिना विचार सकल संसारा ॥  
अगम ज्ञान न विचारे सारा । कैसे उतरे भवजल पारा ॥  
सोई विचार नाम लौ लावे । ज्ञान विचारि परमपद पावे ॥  
शेषसहस मुख निशिदिन गावे । वरनत वेद अन्त नहिं पावे ॥

महापुरुष कां कहां विचारा । तुव अनन्त गति लहै को पारा ॥  
 करम प्रधान जीव संचरई । तेहि को मिलै जहां मन धरई ॥  
 शीत उष्ण सुख दुख संसारा । आपुहि सृष्टि लीन्ह ते भारा ॥  
 यह सब सुपन देहको आही । प्रकृति भेद कछु लिप्त न जाई ॥  
 रविघन जैसे जीवहि सांधे । माया ताहि सकै नहि बांधे ॥  
 किमि माया जिव ढकि सोइ लेई । भुलाई स्वरूप सुख दुख ते देई ॥  
 कहूँ भेद सुनु सन्त सुजाना । कथा मोह विवेककर व्याना ॥

प्रथम मोह राजा का वर्णन ।

मोह नृपति मायाते भयऊ । प्रबल घटा तिहुँ पुर सो छयऊ ॥  
 बरनो तासु नाम गुण बैना । महा मोह राजाको सैना ॥

मोहकी स्थिति ।

निज अज्ञान देश रजधानी । आलस महल आशा पटरानी ॥  
 इच्छा बेटी खरी कठोरी । बांधे अनेक जीव उठि भोरी ॥  
 कुमति सखी ताके संग रहई । निति उठि हृदय सबनकी दहई ॥  
 लौंडी छूत टहल घर करई । जाके परसत सब जग डरई ॥  
 लौंडा लालच नाहिं अघावे । वरजत निलज सबके घर जावे ॥  
 रोग शोक संशय बहु भांती । पर द्रोही औ द्वन्द सँघाती ॥  
 ये राजा के पुत्र प्रचंडा । जाके डर त्रासै नौ खंडा ॥  
 पाप सबन को औगुन जानी । दुख दरिद्र मोद अभिमानी ॥  
 अधर्म ध्वजा जाके अगवानी । बाजा प्रकट कलह निशानी ॥  
 दम्भ क्षत्र चौतरा शूला । जहँ सिंहासन बैंठे फूला ॥  
 कपट वजीर असत्य खवासा । पाखण्ड मन्त्री संग प्रकासा ॥

१ क्या । २ जिस प्रकारसे मेघ सूर्य को ढक लेता है किंतु उसका अनिष्ट नहीं कर सकता उसके स्वरूप का नाश नहीं कर सकता है उसी प्रकारसे माया जीव को आच्छादन करती है किंतु उसके स्वरूप में अदल बदल नहीं कर सकती ।

साखी-यह सेना सब मोहकी, कहै कबीर समझाय ॥

इतने जो को बाचई, भौसागर तरि जाय ॥

मोह के मुसाहिब-चौपाई ।

प्रथम उमराव दम्भ बखाने । ब्राह्मण छुए पर अचवन आने ॥  
 औरा बरनों उमराव जो आगे । तिनहू ते कोउ उबरे भागे ॥  
 काम क्रोध गर्व औ लोभा । महा मोह बांधे संशोभा ॥  
 काम कमान गति कीन्हो दापू । अहं औ गर्व समाने आपू ॥  
 लोभ मिलै उपजै संतापू । चारिउ करे तिहूँ पुर दापू ॥  
 बरनूं एक एक की बाती । सुनि उघरी कायर की छाती ॥

कामप्रताप वर्णन ।

प्रथम काम धनुष कर लीन्हे । पांच बान सो तासंग चीन्हे ॥  
 मोहन वशीकरण उचाटा । बान लगत घर भूले बाटा ॥  
 दुष्ट काम उर प्रकटे आयी । ज्ञान विचार बिसरि सब जायी ॥  
 ऋतु वसंत त्रिय सैन सिंगारा । कहि न काम की सेन अपारा ॥  
 सोलह शृंगार देखि मन मानी । निरखत अंग अंग की वानी ॥  
 ऐसी निरखि काल की सैना । सुर नर मुनि उर धरत न चैना ॥

साखी-यह काम अति प्रचण्ड है, होत उत्पन्न तिय अंग ॥

सैन चैन अतिही बढे, चढे काम रति रंग ॥

तन मन अस्थिर ना रहे, काम बान उर साल ॥

एक बाण से, सब किये, सुर नर मुनी विहाल ॥

चौपाई ।

चलै काम यह सबै पलाने । महारुद्र की करत न काने ॥  
 महा रुद्र पहुँ पहुँचे जानी । मारयो पुहुप बान शर तानी ॥  
 देखि मोहिनी मोहे देवा । पुहुप बानको कुछ लह्यो न भेवा ॥  
 छाँडि ध्यान धाये त्रिपुरारी । समुझे जबहीं जब परे जुहारी ॥

जान्यो काम क्रोध मन काछे । चितवत दृष्टि पाचो मति पाछे ॥  
 तब रति देखि दीन है गयऊ । विन्ती करत विषय तन भयऊ ॥  
 जब रति देखि दीन है आई । विन्ती करी तब लखि पाई ॥  
 सृष्टि न होय न चलै संसारा । महा रुद्र तुम करहु विचारा ॥  
 जब शिव देखि दया मन लावा । ता दुख मेटन मनमें आवा ॥  
 तब तिय जानि बहुरि निर्मयऊ । अंगहीन सो अति बलि भयऊ ॥  
 बहुरि काम ब्रह्मा पहुँ आया । देखत नाहिं कोप मन भाया ॥  
 षट पुत्रिन कहँ दीन्हों शापू । षट जन्म मृतवत्सा तुमहो आपू ॥  
 बहुरि काम चले समुहायी । तेतिस क्रोड किये वशि जाई ॥  
 काम बान शर धरि लीन्हा । जीतनचले सो आपु वशि कीन्हा ॥  
 इन्द्रसेन सब गयी जब हारी । इन्द्रहु की गई बुद्धि मति मारी ॥  
 जबही इन्द्र कामवश भयऊ । गौतम नारि छलन तब गयऊ ॥  
 काम कोपि सुरपति पर आये । अति आतुर अहिल्या पहुँ धाये ॥  
 जबते चितमें चितये पापू । सहे उग्र गौतम को शापू ॥  
 सहस्र भग ताकहँ भयऊ । काम बान कर फल यह ठयऊ ॥  
 काम चन्द्र पर चितवे जबहीं । जाइ हरे गुरु-पत्नी तबहीं ॥  
 साखी-ऐसो असुर घटमों बसे, सुनहु हो धर्मदास ॥

घट परिचय जाने विना, सब का भया विनास ॥

तन मन लज्जा ना रहै, काम बाण उर साल ॥

एक काम सब वसि किये, सुर नर मुनी विहाल ॥

चौपाई ।

ऐसो असुर वरनो काही । जागे सोवत मारे चाही ॥  
 शृंगी ऋषी जो वनमहँ जाये । कन्द मूल खनी वन फल खाये ॥  
 ऐसन ज्ञान ध्यान मन धरई । सोउ काम वसि फिरि फिरि परई ॥  
 नारद आदि पंच शर तानी । और अनेक जेहि नर ज्ञानी ॥

काम बाण जब दशरथ लागे । राम छुटे तब प्राणै त्यागे ॥  
 काम बली अति बलवंडा । जासु बान रहे विकल ब्रह्मण्डा ॥  
 काम वशि भये रावण राऊ । हरण सीता किय नाश उपाऊ ॥  
 बड २ ज्ञानी जग महँ भयऊ । काम त्रास सबन कहँ दयऊ ॥  
 काम बाण ते बाचे सोई । शब्द विवेक जाके हिय होई ॥  
 काम अतिपरबलसुनु धर्मदासा । सब कहँ दिये निरंजनफासा ॥

साखी-प्रेम प्रीति सो बांधिया, कहे कबीर समझाय ॥

ता प्रेम महँ विवेक विनु, रहे जीव मुरझाय ॥

सुर नर मुनि सब जीतिया, कोइ न उबरे धाम ॥

महा मोह शिर नायके, कियो उपायन काम ॥

क्रोध प्रताप वर्णन ।

चौपाई ।

काम धाम परि सब अकुलाते । अब निज सुनो क्रोधकी बाते ॥  
 काम ते आधिक क्रोध परचण्डा । जाके डर तरासै नौ खण्डा ॥  
 गुरु कुबुद्धि क्रोध के संगी । अडर भेष धरि चढत जो अंगा ॥  
 जब उर क्रोध परगटे आयी । कापै देह थर थर हो जायी ॥  
 टेढी भौहैं अंकित नैना । अशुभ असार मुख बोले बैना ॥  
 जरै हृदय मुख निकसे झारा । रोम रोम पावक पर जारा ॥  
 मार मार करै अपघाता । गिनै न मातु पिता औ भ्राता ॥  
 दुई जाय कै विनशै आपा । दारुण हिया क्रोध कै रूपा ॥  
 प्रथमें क्रोध ब्रह्मा को भयऊ । षट पुत्रन कहँ शाप जो दयऊ ॥  
 ब्रह्म अहै सहै नहिं रूपा । उपज्यो क्रोध जो सबही भूपा ॥  
 सनकादिक बैकुण्ठे गयऊ । रोकत पौरी क्रोध मन भयऊ ॥  
 ब्रह्म पुत्र सह्यो नहिं छोडू । जय अरु विजय असुर दोइ होडू ॥  
 उपज्यो क्रोध सहै को भूपा । दरशन भये क्रोध के रूपा ॥

तजि द्वार देह धरो जायी । जनम तीसरे मिलहो आई ॥  
 क्रोधते वे तीन जन्म विहाला । हरिनाकुश रावण शिशुपाला ॥  
 जब जब शिव क्रोध करै संसारा । परलय होत न लागे बारा ॥  
 जब सुर असुर क्रोधकियो रामा । भयो ताडका मारन संग्रामा ॥  
 दुरबासा क्रोध न सहेऊ । उलटी हानी तप में भयऊ ॥  
 छप्पन कोटि यादव संघारा । आपुहिं आप क्रोध परजारा ॥  
 क्रोध किये सब कुल नाठी । सगर पुत्र जरे सहस्र साठी ॥  
 करि क्रोध भये जरि छारा । राजा रंक गनै को पारा ॥  
 कौरव पाण्डव क्रोधहि जारे । आपहि आप गये सब मारे ॥  
 साखी-दशो दिशा ते उठी, परबल क्रोधकी आग ॥

संगति शीतल साधुकी, शरण उबरिये भाग ॥

चौपाई ।

कहै कबीर क्रोध पर हरै । सोई प्राणी भौसागर तरै ॥  
 क्षण क्षण क्रोध हृदयमें आवै । जप तप ज्ञान रहै नहिं पावै ॥  
 पण्डित गुणि योगी वैरागी ! ये सब जरैं क्रोध की आगी ॥  
 पंच अग्नि ग्रीष्मऋतु धरई । ऐसी विधि त्रिकाल तप करई ॥  
 पांचौ इन्द्री करै निरासा । साधे निद्रा भूख पियासा ॥  
 जतन जतन बहुत तप करहीं । क्रोधछुडाय छन एकमहँ हरहीं ॥  
 क्रोध ते रोग शोक संतापा । क्रोध फन्दा परि विनशे आपा ॥  
 क्रोधहि ते मूरख होय आवा । क्रोधै ते म्लेच्छ गति पावा ॥  
 क्रोधैते नर नरके जायी । जोनिन संग कष्ट भरमायी ॥  
 सिद्ध काज विनासै क्रोधा । सब फल जाइ न पावै सोधा ॥

साखी-बहुत जतन तप कीनेऊ, सब फल क्रोध नसाय ॥

कहै कबीर धन संचै, चोर मूसि लै जाय ॥

कहै कबिर विचारिके, क्रोध अग्नि बहु जाग ॥

संगति साधु सतनामकी, शरन उबरिये भाग ॥  
 क्रोध अग्नि घटघटवरी, जरत सकल संसार ॥  
 दीन लीन निज भक्ति सो, ताकर निकट उबार ॥

लोभ प्रताप वर्णन ।

चौपाई ।

वरण्यो काम क्रोध मन जाथा । अब सुनु निलज लोभकी गाथा ॥  
 बुरा लोभते और न कोई । सकल अधर्म लोभ ते होई ॥  
 हाथ लकुटी नट कपिहिं नचावै । यहि विधिसकल जीव भरमावै ॥  
 पुनि ते मायही मन लावे । अगम सुगम दशहूं दिशि धावे ॥  
 अंकिप आनिके जोरै दामा । तन मन देइ करै जम सामा ॥  
 खोवै बुद्धि करै जंजाला । समुझै नहीं मृत्यु औ काला ॥  
 आपदा होय नहीं विश्रामा । कही अगनित जो डूबे दामा ॥  
 जब मन लागे द्रव्य के संगी । जागत सोवत सुख नहिं अंगा ॥  
 पल एक में गुरु ज्ञान बतावे । जब शिष चोर द्रव्य पर लावे ॥  
 ऐसी वस्तु गुरु मोहिं दैहैं । जेहि प्रकार मोरे धन होहिंहैं ॥  
 ऐसी आश लगावे चेला । अपने दाव करे भक्ति दुहेला ॥  
 लोभविवश गुरुभक्ति करई । मनमें लोभ मुख भगती धरई ॥  
 गुरु महिमा कर माल चढावे । परफुल्लित होय भक्ति मुख गावे ॥  
 मन में लावे कछु औरै । ठाठ बाट देखि सो दौरे ॥

साखी—गुरु लोभी शिष लालची, दोनों खेलें दाव ॥

दोऊ बूडे बापुरे, चढि पाथरके नाव ॥

चौपाई ।

कलियुग वैराग अस होवे भाई । सुनु धरमदास मैं कहौं बुझाई ॥  
 कलियुग पाप कर्म बहु बढि हैं । करि करि पाप दुख में पडिहैं ॥  
 ताते दरिद्र होय बहु लोग । सहिहैं बहुते दुखरू सोग ॥

पाइ दुख बहु भेषों धरिहैं । लागे लोभ पाप बहु करि हैं ॥  
 मांगि मांगिकछु द्रव्य कमायी । ऋण व्याज पर दिहैं उठायी ॥  
 नाम साधु जग मांहि कहायी । खैहैं व्याज करि कर्म कसायी ॥  
 मठ मन्दिर कारण धन लैहैं । सेवक साख बहुत बढैहैं ॥  
 साधू सेवा सबहि बतायी । नाम परमारथ करहि ठगाई ॥  
 पाइ द्रव्य विषय सो भोगि हैं । बहु विधि इंद्रिन सुख लगि हैं ॥  
 विषय भोग को द्रव्य सो चाही । तब पडि हैं वह तृष्णा मांही ॥  
 तृष्णा अति परबल जग भंगी । सदा रहै वह लोभ की संगी ॥  
 अर्द्धांगिनी लोभ की कहिये । अब ताकर वृत्तांत सो लहिये ॥

साखी—जब मन लागे लोभ सो, गया विषमें विष बोइ ॥

कहै कबीर बिचारि के, यही प्रकार धन होइ ॥

चौपाई ।

पहिले पैसा मों मन लावे । पैसा मिले टकाको धावे ॥  
 टका देखि मन में सुख भयऊ । दो टका का उद्यम कियऊ ॥  
 दुइ जोरे जोरे फिर चारी । लोभ पाति दीन्हों परचारी ॥  
 चारि जोरि मन उपज्यो रंगू । अब दश कै जोर होय जनिभंगू ॥  
 दश जुरै मन रहे न ठोरा । जोरि बीस मन आगे दौरा ॥  
 बीस जोरि मन बाढी आशा । अब जो कैसेहुके जुरे पचासा ॥  
 जोरि पचास गांठ सौ दीन्हा । तब सहस्र को उद्यम कीन्हा ॥  
 जोरि सहस्र तृष्णा नहिं साखू । अब लागै जोरन लाखू ॥  
 लाख जोरि विनवै कर जोरी । अब परमेश्वर मोहि देहिं करोरी ॥  
 जोरि करोर क्षण कल नहिं परै । लौनअगिनछिनछिन तनु जरै ॥  
 ज्यों ज्यों लोभ मिलै नौखण्डा । त्यों त्यों लोभ भयो परचण्डा ॥  
 ज्यों ज्यों तरुण बालपन गयऊ । त्यों त्यों तरुण लोभ अतिभयऊ ॥  
 धनकूं धाय धायके धरई । ज्यों पतंग दीपक में परई ॥  
 धनकूं धाय आन कू लागे । होय जरा त्यों त्यों धन मांगे ॥

साखी-धावै औगुन धनहि को, लालच बान चढाइ ॥  
 कहै कबीर विचारि के, गुण शील सब जाइ ॥  
 जहाँ लोभगुन औगुनहै, तहाँ नहिं शील सुभाव ॥  
 लोभ औगुन ते वाचनो, गुरु विनु कहै को दाव ॥

चौपाई ।

लोभ अग्नि लागे नहिं जागे । सब गुन आहि तौ काहे लागे ॥  
 सब अरथ कही दिखलावै । सूर सारंग जो गाइ सुनावै ॥  
 चारि वेद व्याकरण समाना । और अष्टादश पढहिं पुराना ॥  
 जंत्र मंत्र जानत अति नीके । सब गुन अहित लोभके फीके ॥  
 करि तपस्या वह देह जरावे । उलटा लटकि बहु सिद्ध कहावे ॥  
 औरन को परमोध बहु करई । त्याग दृढावत जहँ तहँ फिरई ॥  
 और नहिं छुडावे परिवारा । मंडली बढावन मनमें धारा ॥  
 करि परिश्रम बहु धन जोरई । खरचे न खाय किरपिनता धरई ॥  
 यह सब काम लोभ का भाई । विनु सतगुरु नहिं लोभ छुटाई ॥

साखी-भेष भक्त मुदित सबै, ज्ञानी गुनी अपार ॥  
 पट दर्शन फीके परे, एक लोभके लार ॥  
 भगत मुडिया जटाधारी, ज्ञानी गुनी अपार ॥  
 पट दर्शन भटकत फिरे, एक लोभकी लार ॥

अथ गर्वका कर्तृत्व वर्णन ।

चौपाई ।

जाते दारुण दुख सुख भाऊ । बढ्यो अपरबल लोभ उमराऊ ॥  
 निर्लज लोभकी कथा बखानी । सुनहु जीव गति गर्ब अभिमानी ॥  
 छिन छिन गर्ब हिया में आवे । आगे कुटिल सबही दिखलावे ॥  
 ऐंडत चलै निहारत पागा । गर्ब खबीस तबहिं उठि लागा ॥

ऐंठ अकड अभिमानी माहीं । अभिमानी नीचा हों नाहीं ॥  
 मूछे ताव निहारत छाहीं । काँधे धरे अवर की बाँहीं ॥  
 टेढी पाग गर्ब मन धरई । मन महुँ ऊमतवालो फिरई ॥  
 अनीति वचन औरनसो बकै । हमरी बरोबरी को करि सकै ॥  
 हम कुल बडे बडन के जाये । हमरी आदि साख चलि आये ॥  
 नाती पूत हमारे चाही । कुटुम्ब बहुत हमारे आही ॥  
 घर मडवा अँगनाह हमारे । फूले फिरे गर्व के मारे ॥  
 झूठ कपट अभिमानी खेलै । कंचन बर्तन माटी मेलै ॥

साखी-छर्ब गर्ब अति सर्व सुख, विषय विकार न भूल ॥

कहै कबीर काल शिर पर, लिये हाथ त्रिशूल ॥  
 अति के गर्व न होय भाई । गर्वहि ते पुनि सर्व नशायी ॥  
 अभिमानी नहिं छूटे कबहुँ । बहु विचक्षण ज्ञानी होय तबहुँ ॥  
 भगली दम्भ नितही मन माहीं । निकट सांच कछु आवे नाहीं ॥  
 हम हम हम करत सो डोलै । काहू ते सीधा नहिं बोलै ॥  
 रूपवन्त रूप गरवावै । कोई मोसम दृष्टि न आवै ॥  
 तरुणापा तरुण पछारा । अन्ध बनाइ गर्ब तेहि मारा ॥  
 धन कुल विद्या गर्बाना । धनी ऊंच ज्ञानो विखराना ॥  
 अहै भूप राजा अभिमानी । आपेही को सरवस जानी ॥  
 है योगी योग गर्व धारै । बडे बडे सिद्ध काल गहि मारै ॥  
 है भेसी टेक मन धरई । विचार विवेक दूर सो करई ॥  
 कहै पुकार धरि अभिमाना । मेरा नीका सुन यह ताना ॥  
 मेरे फन्द जो आवै कोई । परसत मोहि नरकमहुँ सोई ॥

---

१ धनाभिमानी अपनेको सबसे अधिक धनी जानता है ।  
 जात्यभिमानी अपनी जातिको सबसे ऊँची मानता है ।  
 विद्याभिमानी अपनेको सबसे अधिक ज्ञानी अनुमानता है ।

साखी-सर्व परहारी नाशके, तुरतहि देइ सजाइ ॥

ताकर दर्श न पाइ नर, तुरतहिं नरके जाइ ॥

इति श्रीविवेकसागरे मोहदलपरीक्षावर्णनो नाम प्रथमस्तरंगः ।

## अथ द्वितीयस्तरंगः ।

विवेकदल वर्णन ।

अब सुनु विवेकराय की गाथा । पर सुखदाई जाकर साथी ॥

विवेक स्तुति ।

आदि अंत लोक के राई । तुमरी गति कछु वरनि न जाई ॥

सब विस्तार तुमहीं विस्तारे । सत रज तम तीनों गुणधारे ॥

ऐसे परम पुरुष के अंशू । प्रगटें प्रेम विवेक सुख वंशू ॥

विवेककी स्थिति ।

निरमल साधु उर निजपुरथाना । तिलक ध्वजा माल औ बाना ॥

ज्ञान देश प्रकाश रजधानी । आनन्द रूपी विवेक परवानी ॥

विवेक की सेना ।

सुनहु विवेक राज की सैना । जाके राज सकल सुख चैना ॥

उमरा धीरज धर्म औ ज्ञाना । प्रेम भक्ति बाजै निश्शाना ॥

निजानन्द महल पग धरई । श्रद्धा रानी सेवा करई ॥

निर्भय संत सुशील सुभाऊ । ये विवेक के पुत्र कहाऊ ॥

ऐसे नृपविवेक के अंशू । प्रकटे आद प्रेम सुख वंशू ॥

नृप विवेक की बेटी चारी । सत्य दया क्षमा शुभकारी ॥

१ इस पुस्तककी जितनी प्रतियाँ इस समय मेरे सन्मुख उपस्थित हैं उन सबोंमें सारद और सरधा इन दो प्रकारसे लिखे हैं ।

२ लिखते तो हैं बेटीचार किन्तु आगे नाम देते हैं दया और क्षमा दोहीका यह मूल पुस्तक रचयिताकी भूल तो कही नहीं सकते क्योंकि जो इस प्रकारकी उत्तम पुस्तक लिखनेकी अभिलाषा रखता होगा उसके पास सामग्री भी होगी किन्तु लेखक महाशयोंकी कृपाका फल है ।

सत्य संतोष साथ है ताही । नरक परत गहि राखत वाही ॥  
 लौंडी सुबुद्धि सबनकी लाजा । लौ लौंडा पुरवे सब काजा ॥  
 सुचित शील और अनुरागी । क्षमा स्वभाव बैठे वैरागी ॥  
 रहनी छत्र चौतरा सुभाऊ । सहज सिंहासन बैठे राऊ ॥  
 व्रत वजीर और सत्य खवासू । मंत्री निरभै संग प्रकासू ॥  
 करहिं वेद ताके सुख सेवा । विवेक प्रसाद सदा सुखदेवा ॥  
 धीरज ज्ञान धर्म उमराऊ । ये राजाकी करहिं सहाऊ ॥  
 उग्रज्ञान प्रकटे जब आयी । ताक्षण मोह सबै मिटि जायी ॥  
 ज्ञानवन्त जब प्रकट ह्वे आवै । काल जंजाल सबै मिटि जावै ॥  
 चौकी मोह सबै उठि भागे । भागे कपट ज्ञानके जागे ॥  
 दुष्ट काल पल लागत गयऊ । ज्ञान चक्षु हिरदय तब भयऊ ॥  
 कोहौं अहऊं कहैं ते आयो । जैहों कहाँ काहि मन लावो ॥  
 कहौं को तुम को संसारा । काहे बंध्यो सो करो विचारा ॥  
 झूठे मोह बन्धो संसारा । कहे बंध्यो सो करो विचारा ॥  
 जैहो कुगतिलोभ संचारा । झूठे मोह बन्धो संसारा ॥  
 दंपति सुख संपति परिवारा । ये सब मायाको विस्तारा ॥  
 जैसे छिन बदरीकी छाया । ऐसे गहे देत सुख माया ॥  
 ये सब सुख सपनेको राजू । जागि परे कुछ सरे न काजू ॥  
 झूठे आहि देहको नातो । ये सब माया केर समातो ॥  
 तन जारे भसम होय जाई । मेहरी मातु नातु नहिं काई ॥  
 ऐसो ज्ञान मन प्रगटे आयी । तो कहु मोह कहाँ ठहरायी ॥  
 ज्ञान मोह दल देखी दाही । कदली गर्ब विचाला चाही ॥

साखी-प्रकटे प्रेम विवेक दल, कहे कबीर समझाइ ॥

उग्रज्ञान अति बली, जेहि सुनि मोह डराइ ॥

नाम हेतु जो कीजे कर्मा । कहै कबीर सोई निज धर्मा ।  
 सांचो धर्म जानिये सोई । प्रगट स्नेह नाम सो होई ।  
 तन मन धन जो नामे दैहैं । सोई भक्त कबीर कहैं हैं ।  
 अग्नि जायके शिर धरयी । तौहु न नाम महिमाते परयी ।  
 कोटिक सुख कोटिन दुखपावैं । धीरजवंत नाम लौ लावैं ।

विवेक और मोहकी छोड छाड ।

ऐसो ज्ञान प्रगट जब भयऊ । चिंता मोह सबै मिटि गयऊ ।  
 उपज्यो काम क्रोध मोह दापू । निज धीरजके वश भय आपू ।  
 लोभ मोहकी अग्नि अतिदहई । सन्तोष पोष प्रवृत्त होय रहई ।  
 धीरज धर्म ज्ञान मन दियऊ । तबहीं मोह चकित होय रहेऊ ।

विवेक और मोहयुद्ध वर्णन ।

तबहि मोह मन्त्र उपजावा । पाखण्ड मित्र निकट बुलावा ।  
 सकल सैन को बुलवायऊ । मित्र एक जोडि ठहरायऊ ।  
 आये प्रबल विवेक नरेशा । लीन्हें आइ हमारो देशा ।  
 अब मति मन्त्र करो ठहरायी । देश आपनो लेहु छुडायी ।  
 कहै पाखण्ड सुनो मम राजा । यह बड कौन अहै सो काजा ।  
 राजा मन्त्र हमारो लीजै । प्रथम कामको आयसु दीजै ।  
 आगे आगे काम रह भरपूरी । ज्ञान विवेक जाहि सब दूरी ।  
 तबहि काम कहँ आयसु दियऊ । दल बादल सह रन सो गयऊ ।

काम और ज्ञानयुद्ध ।

काम कुपित बचन सुनायो । हमरे देश ज्ञान कहँ आयो ।  
 उतै भयो काम उतै भयो ज्ञाना । मानस भूमि रच्यो संग्रामा ।  
 कहे कबीर यहै परमाना । काम ज्ञान युद्ध तब ठाना ।  
 बहु रूप धरि काम तिवाना । तबही चलावै पाँचो बाना ।  
 निरफल कियो ताहि तब ज्ञाना । सुरति शब्द लै रहे निदाना ।

काम कहै यह नीकि सुन्दरी । कहै ज्ञान यह विष की दहरी ॥  
 काम कहै याके ढिग जाई । ज्ञान कहै यह सांपिन अहंई ॥  
 काम कहै कामिनि समतूला । ज्ञान कहै यह विष कर मूला ॥  
 कामासक्त कुदृष्टिसन राता । ज्ञानसक्त करि बोलै माता ॥  
 यह सुनि बहुत अजब भौ कामा । सद्यो ज्ञान हमरो संग्रामा ॥

साखी-रच्यो कामछंद अनंगरती, त्रिविधि मद त्रियासंग ॥  
 कहै कबीर यह अति बढै, जब बढैं काम रतिरंग ॥  
 चौपाई ।

शब्द विचारै बोलै ज्ञाना । जीत्यो तोहि विवेककी आना ॥  
 तबही विचारै ज्ञान सो कीया । बाका भेद सबै सो लीया ॥  
 ज्ञान विचार उठे गल गाजी । काम निलज्ज न काहे भाजी ॥  
 धिग तिया धिग धिग अस राजा । निरधिनरुधिरमांस को साजा ॥  
 हाड त्वचा मुख रोम पसारा । नव द्वार बहैं अति खारा ॥  
 रेंट नाक मख कफ लारा । कीचड आंखिन काने छारा ॥  
 नख शिख व्याधि सबै विस्तारा । विष्टा मूत्र तिया तन भारा ॥  
 वाहि राँचैं सो पावै दुखबू । सपने नहिं तेहि होये सुखबू ॥  
 दुख की राशि जो राजी कोई । साचो नर्क आहि पुनि सोई ॥  
 यह कहि ज्ञान रहा ठहराई । काम सैन डारै विचलाई ॥  
 विचल्यो काम गयो खिसियायी । उग्र ज्ञानते कछु न बसाई ॥

साखी-प्रेम भक्ति बल ज्ञानते, रूप रद्यो रन पाय ॥  
 मोहि काम का करि हैं, जो साहब होइ सहाय ॥  
 चौपाई ।

विचल्यो काम मोह पहुँ गयऊ । सबहि वृत्तान्त सुनावन लयऊ ॥  
 मनमें मोह बहुत पछतायी । बोलाइ क्रोधको बात सुनायी ॥  
 आइ क्रोध जब ठाडे रहेऊ । तबही मोह क्रोध से कहेऊ ॥

तामस तेज नाम तोहि क्रुद्धा । करु विवेक ज्ञानसो युद्धा ॥  
 कहँ अस प्रबल तोहि को सहै । तोरे तेज ज्ञान कहँ रहै ॥  
 वह सुनि क्रोध चला समुहाई । करी गवन पहुँचा रन आई ॥  
 तनमें आइ कियो परवेशा । छांडो ज्ञान हमारो देशा ॥  
 जो तुम निश्चय जीतो कामा । तो अब मोसों करो संग्रामा ॥  
 यह सुनि ज्ञान अचम्भित भयऊ । जाइ विवेक राइ सों कहेऊ ॥  
 राजा तब यक मंत्र विचारचो । जेहिविधि प्रबल क्रोधको मारचो ॥  
 साखी—यह अति क्रोध प्रचण्ड है, कोपि करै भयमंत ॥

सुधि बुधि धीरज ना रहै, जब यह कोपि चढंत ॥

चौपाई ।

तब राजा मंत्रिन सो कहै । प्रबल क्रोध क्यहि कारण दहै ॥  
 तब सबहि मिलि मंत्र विचारा । यह तो जाय क्षमा ते मारा ॥  
 बोलि विवेक क्षमा सो कहै । तुम तो जाइ क्रोध रन बहै ॥  
 भक्ति ज्ञान तेहि देह सहाई । प्रबल क्रोध को मारो जाई ॥  
 यहि सुनि क्षमा रोपे रन आयी । लीन्हो शील जो धनुष चढायी ॥

क्रोध और क्षमा का युद्ध ।

देखि क्षमा क्रोध चले धायी । मनसा भूमि रोप्यो रन आयी ॥  
 सुनो क्षमा क्रोध संग्रामा । लरही दोउ जुझै संग्रामा ॥  
 उतते क्रोध उठे रन कोपी । इतते क्षमा रहै रण रोपी ॥  
 मारन क्रोध उठे जब धायी । इतते क्षमा दीन्ह मुसकायी ॥  
 क्रोध आन तब गारी दयी । सुनि क्षमा अन बोली भयी ॥  
 मीठे बचन क्षमा अति बोलै । कोपै क्रोध पवन ज्यों डोलै ॥  
 क्षमा से क्रोध शितल है जाई । जैसे जलमें अग्नि बुझाई ॥  
 यहि विधि क्रोध क्षमा सो भिरई । मानहु अँगार पानिमहँ परई ॥

साखी—भलो भलो सबकोइ कहै, रहि गई क्षमा दुहाइ ॥

कहैं कबीर शीतल मये, गयी सो अग्नि बुझाइ ॥

चौपाई ।

क्रोध जरनते गयउ बुझायी । राजा मोह समाचार तब पायी ॥  
 बहुते मन महँ कीन्ह पछताई । सकल सैन को लिये बुलाई ॥  
 हारयो क्रोध काम जब जाना । महा मोह राजा डर माना ॥  
 चकित मोह मंत्री हँकरावा । सम्मुख मोह विवेक डरावा ॥  
 लोभ मन्त्री आय भये ठाढा । देखत राव छोभ अति बाढा ॥  
 तब लोभ मोहहि माथ नवाई । कहु राजा मोहि काहे बुलाई ॥  
 जबलगि अहै मोह रणधीरा । तब लग काहे होहु अधीरा ॥  
 जबलग प्रबल मोह है आगे । तब लग कहा ज्ञान कह जागे ॥  
 महा मोह राजा सुनु बैना । जबलगि हौं तबलगि सब सैना ॥  
 जबलगि हौं तब लगि आही । मोरे गये सबै मिटि जाही ॥  
 हौं निज सर्व पापका मूला । मोरे ते तुम रहत हौ फूला ॥  
 जीतौं ज्ञान विवेकहि जायी । देश आपनो लेउ छुडायी ॥  
 तोकहँ फिरि मैं दैहौं राजू । महामोह मोरे बल गाजू ॥  
 यह सुनि हर्ष मोह मन भयऊ । तत्क्षण लोभको आयसु दयऊ ॥  
 मोह कहै दैहौं सब राजू । तबहीं लोभ रणै महँ गाजू ॥  
 जबही मोह लोभहि कहेऊ । देई बीरा आयसु दयऊ ॥  
 बाचा बन्ध राजा जब भयऊ । तबही लोभ रण कहँ गयऊ ॥  
 जाई रण दियो लोभ हँकारा । ज्ञान तुम का करहु तकरा ॥  
 हम बन्दाबस्त कियो परवेशा । छोडहु ज्ञान हमारो देशा ॥  
 तजहु ज्ञान तुम हमरो ठाऊं । मैं प्रचण्ड लोभ मोर नाऊं ॥  
 अब मैं रनमहँ अग्नि परजारौं । करि बल एक एक कै मारौं ॥  
 चिन्ता शक्ति पापको मूला । कोउ न जानै मम डर भूला ॥  
 आशा तृष्णा तहां अति बहै । सुनत ज्ञान तहां नहिं रहै ॥  
 नहिं जानो तुम क्रोध औ कामा । हौं अति प्रबल लोभ मुहि नामा ॥

छाँडहु ज्ञान हमारो ठाऊं । नहिं तो तोहि धरि धरि खाऊं ॥  
 यह सुनि ज्ञान मन्त्र यक ठयऊ । फिरि विवेक राजा पहुँ गयऊ ॥  
 राजा मन्त्र करो ठहराई । लोभ न मोपै जीतो जायी ॥  
 जो तुम लोभ जीतौ आजू । तौ तुम करो निकटक राजू ॥  
 तब बोले मन्त्री प्रकाशा । यहिविधि होई लोभ को नाशा ॥  
 राजा मन्त्र कियो मन चाही । पुत्र तुम्हारो जीते याही ॥  
 सो संतोष कुवरकर नामा । सो निश्चय जीते संग्रामा ॥  
 तब राजा बोलै सन्तोखा । लोभै जीतौ मिटै सब धोखा ॥  
 भक्ति ज्ञान तोहि देहुँ सहाई । प्रबल लोभ कहँ जीतहु जाई ॥

लोभ और संतोष का युद्ध ।

इत भौ लोभ उत भौ सन्तोषा । मनसा भूमि उठ्यो रन रोषा ॥  
 लालच बाण लोभ संचारा । क्षमा बाण सन्तोष तेहि मारा ॥  
 लोभ चलावै धनुष कहँ खेंची । सन्तोष लीन्ह सुमिरन की ऐंची ॥  
 चिंता शक्ति लोभ पठायी । ज्ञान शक्ति सो निष्फल जायी ॥  
 अतिदुखफांसीलोभ कर लयऊ । उग्र ज्ञान संतोष मिटैऊ ॥  
 परम सन्ताप लोभ कर लयऊ । सो दया खड्ग ते निष्फल गयऊ ॥  
 अचेत शक्ति लोभ चलाई । जागृत शक्ति सन्तोष पठायी ॥  
 लोभ कहै पैसा तुम लहिये । सन्तोष कहै कछु नहिं चाहिये ॥  
 लोभ कहे नीको है रूपा । सन्तोष कहै छाडि गय भूपा ॥  
 लोभ कहे लेव कंचन मोरा । सन्तोष कहे जीवन है थोरा ॥  
 लोभ कहे घोडा जोडा नीका । सन्तोष कहै कारज नहिं जीका ॥  
 लोभ कहै हीरा ल्यो लालू । सन्तोष कहे संग नहीं चालू ॥  
 सांच धनुष कर गहि धयऊ । चपल लोभ चापि दल गयऊ ॥  
 उदासी शक्ति उरमें उपजायी । कंप्यो लोभ ज्यों बिष खायी ॥  
 धीरज खड्ग गह्यो सन्तोखा । बिचल्यो लोभ मिट्यो सब धोखा ॥

साखी-काम क्रोध विचले, विचले लोभ अकाज ॥  
महामोह मनमहँ झखे, गयो हमारो राज ॥  
काम क्रोध दोऊ गये, गये लोभ दल भाज ॥  
दया क्षमा सन्तोष बल, रहै विवेक सो गाज ॥

चौपाई ।

मोह बुलायि गर्ब सन कहेऊ । बिचलो सबै एक तुम रहेऊ ॥  
अब मेरो तुम करो सहाऊ । मोरे संग गर्व उठि धाऊ ॥  
ज्ञान विवेक को मारि भगावैं । जप तप साधन मारि सब लावैं ॥  
बोले गर्व मोह ते तबहीं । का बिसात विवेक की अबहीं ॥  
मेरो हँकार फिरे जेहि देशा । रहै न ज्ञान बिचारको लेशा ॥  
बाकी सैन रहे सब जोही । लीन्ह बुलाय मोह तब ओही ॥  
लीन्ह सजाय सैन बहु रंगी । मोह गर्व चढे एकसंगी ॥  
मोह दल जब पहुँचे रणमाहीं । खबर भयी विवेक पहुँ ताहीं ॥  
सज्यो सेन तब सबसुखदाई । होय निशंक चले रण भाई ॥  
उतते मोह रण रंग मचावा । इत विवेक राजा चढि आवा ॥  
साखी-दोउ दल चढि ठाठे भये, मनमें भये निश्चित ॥

कहे कबीर बिचारिकै, डरे मोह मदभन्त ॥

चौपाई ।

देख्यो गर्ब मोह संकाना । करी क्रोध बाण संधाना ॥  
बहु बडाइ सो बोलन लाग्यो । ज्ञान विवेक कहाँ अब भाग्यो ॥  
आवे संमुख मोसे सब काहू । सुनत वचन मोह उत्साहू ॥  
बेसुध बाण गर्ब तब धारा । उतते चैतन बाण सम्भारा ॥  
बल करि गर्ब उठे समुदाई । तबहिं खवास गयो ठहराई ॥  
उग्रज्ञान राज पहुँ गयऊ । गर्व गँवार दृढ अति भयऊ ॥  
राजा मोकहँ आयसु देहू । कौन बाण ते मारौ एहू ॥

दीन तब बाण राजा कर लयऊ । हित कै उग्रज्ञान कहि दयऊ ॥  
 मारयो ज्ञान दीन तेहि बाना । हारयो गर्व लाग्यो विरहाना ॥  
 हारयो गर्व राजा जब जाना । तब निज गयो अपनपौ माना ॥

सारखी-गर्व मुये विकल होई, चले आप रण मांहि ॥

मनही मन पछतावई, मोर कुशल अब नाहि ॥

चौपाई ।

सुन्यो मोह चल्यो गलगाजी । जीतन विवेक चला दल साजी ॥  
 पहुँची रण अस बोलै मोहा । कहाँ विवेक आऊ मम सोहा ॥  
 महा मोह राय मम नामा । सहो ज्ञान मोरो संग्रामा ॥  
 सबै उमराव गयो हरायी । अब नहिं होई तोर कुशलाई ॥  
 मैं बाण चलाओं जबहीं । क्षणमहँ होहु नाश तुम तबहीं ॥  
 कहै विवेक बडका हाको । करो लडाई नाशहि ताको ॥  
 सुनत मोह क्रोध तब कीन्हा । धनुष उठाय कर गहि लीन्हा ॥  
 ममता बाण तबहीं ताना । विचित्र बाण विवेक संधाना ॥  
 आलस शक्ति मोह उपजायी । चैतन शक्ति विवेक चलायी ॥  
 भ्रमण चक्र मोह गहि डारा । चैतन चक्र विवेक पसारा ॥  
 अनर्थ खड्ग मोह कर लियऊ । अर्थ खड्ग ते निरफल गयऊ ॥  
 निद्रा शक्ति मोह संचारी । जागृत शक्ति विवेक तहँ मारी ॥  
 मोहफाँस माया विस्तारी । विवेक बिचार छिनक महँ टारी ॥  
 उपजायो तब मोह अंधेरा । हँसै विवेक यहै बल तेरा ॥  
 प्रकाश बाण विवेक चलयऊ । ततक्षन अंधकार मिटि गयऊ ॥  
 सत्यबाण विवेक संचारा । असत खवास मोह कहँ मारा ॥  
 ज्ञान बाण विवेक जब छाडा । मूर्छित मोह महारथ पाडा ॥  
 करि विवेक मोह तज दीढी । बिचल्यो मोह हृदय गौ पीढी ॥  
 बिचल्यो मोह दशहू दिशि गयऊ । सुपंथ सकल द्वन्द मिटिगयऊ ॥

विवेकसागर ।

साखी—कहै कबीर विवेक दल, अटल ज्ञान दल गाज ॥

अब तो निर्मल होगये, गये मोह दल भाज ॥

सुनहु धर्मनि सत्य विचारा । विना विवेक नहिं उतरे पारा ॥  
 विना विवेक काल धर खाई । धरि धरि मारे काल कसाई ॥  
 काल दूत जग फिरे फिरावै । मोह सैन की वृद्धि करावै ॥  
 जेते महातम जग महुँ होई । काल फन्द जानहु सब सोई ॥  
 विवेक हीन जीव जग जेते । सुनि सुनि धाय धाय तेहि लेते ॥  
 विना विवेक पारख नहिं पावै । झूठी आश लगी सो धावै ॥  
 विना विवेक न चीन्हे सोई । काल दयाल दोऊ कस होई ॥  
 विना विवेक काल गुण गावैं । बार बार भौ चक्कर जावैं ॥  
 सतगुरु उपदेश जब देही । काल जाल छुडावन लेही ॥  
 विवेक सागर जो सुनै सुनावै । करै विचार परम पद पावै ॥  
 निर्मल बुधि अटल गुण गावै । सो हंसा भवजल नहिं आवै ॥  
 मोह विवेक लडाई भाख्यो । छुडावन मोह पक्ष नहिं राख्यो ॥

साखी—यह विवेक सागरकथा, करे श्रवण मन लाइ ॥

अद्भुत ज्ञानप्रकाश तेहि, जियत मोक्ष फल पाइ ॥

कहै कबीर धर्मदाससों, निर्मल ज्ञान विवेक ॥

जाहि सुने सुख उपजे, संशय रहै न नेक ॥

इति श्रीविवेकसागर समाप्त ।

सत्यनाम ।

अथ हंसमुक्तावली ।

अन्तर्गत

## मोह और विवेककी कथा सटीक ।

धर्मदास वचन ।

धरमदास विनयकरि गुरुपदपंकज गहे ॥  
हो प्रभु होहु दयाल दास चित अतिहि दहे ॥  
मन स्थिर नहिं राजत पल प्रति संधना ॥  
कैसे मन थिर होय कहो जग वन्दना ॥

टीका—एक समयके विषय जब कबीर साहब और गुरु धर्मदास साहब दोनोंही प्रसन्न चित्त सत्संगमें मगन थे उस समय मनके प्रसंग पडने पर कबीर साहबने कहा कि मन-को स्थिर कर गुरुकी वाणी में लौ लगाकर पारख करनेसे सत्य पद की प्राप्ति होती है ।

इतने वचनको सुनकर गुरु धर्मदासजीने सतगुरुके चरणको पकडकर बहुत अधीनतासे विनय किया कि, हे भगवन् ! हे प्रभु ! मुझ दासका चित्त सदाही चिन्ता से दहन हुआ करता है । चित्त किस लिये दहन होता है इस प्रश्न के उपस्थित होनेपर कहते हैं कि, हे प्रभु ! आपने कहा कि, मन को स्थिर कर गुरुके शब्दमें लौ लगा, सो मन तो पलमात्र भी स्थिर नहीं होता है, यह मन जिस प्रकारसे स्थिर होकर आप के चरण-कमलों में लग जावे सो मुझसे कहिये । हे प्रभो ! आप समस्त जगत् के पूज्य और वन्दनीय हो, आप के विना मेरे चित्तका दुःख कोई भी छुडानेको समर्थ नहीं है ।

गुरु धर्मदासजीके ऐसे विनय पूर्वक जिज्ञासाको सुनकर सद्गुरु कबीर साहब कहने लगे कि,

सद्गुरुकबीर वचन ।

**सुनो धर्मदास यह भेद बूझे बनिआवई ॥**

**सद्गुरु कहै समतूल थितै जब पावई ॥**

टीका—हे धर्मदास ! यह मन स्थिर करनेकी युक्ति जो तुमने पूछी सो बूझनेसेही बन आती है, किन्तु मनुष्यको इसकी समझ कब पडती है जब कि, एक तो सद्गुरु भी पूर्णरीतिसे स्पष्ट समझानेवाला हो और दूसरे शिष्य अधिकारी हो। समझनेकी योग्यता के साथ २ गुरु में सच्ची श्रद्धा रखनेवाला हो। ऐसे गुरु शिष्य जब एकत्र होवें तब शिष्यको थिरता मिलती है और मन भी शान्त होता है।

यहां तो दोनों सत्य कबीर जैसे गुरु और धर्मदासजी जैसे शिष्य हैं इस कारणसे सद्गुरुने सैनसे यह दिखलाया कि यहां पर सब सामग्री यथास्थित इकट्ठी है। इसी कारणसे सद्गुरुने विशेष न कहकर मननिरोधका मार्ग ( राजयोग ) कहना आरम्भ किया।

**मन राजा अति दारुण तेहि दोय अंगना॥**

**एक कहेउ प्रवृति अतिहि तेहि रंगना ॥**

टीका—सद्गुरु कबीर साहब कहते हैं हे धर्मदास ! यह मन इस शरीररूपी नगरका राजा है। राजा भी ऐसा वैसा नहीं बहुत दारुण अर्थात् भीषम अर्थात् भयंकर है। तहां श्री अनाथदास-जीकृत प्रबोधचन्द्रोदय नाटकमें मनकी उत्पत्ति इस प्रकार लिखी है।

दोहा-निर्विकल्प व्यापक सकल, साखी सर्व असंग ॥  
 सर्वरूप सबते परे, सबविधि जान अभंग ॥  
 आदि पुरुष सर्वज्ञ अज, पूरण रूप अनन्त ॥  
 यही भांति हरि नित्त हैं, नेति वेद गावन्त ॥  
 त्रिगुण नियन्ता ईश जो, सत चित सदा निवृत्त ॥  
 ताको इच्छा मात्रही, बल पायो प्राकृत ॥  
 प्रकृति पुरुष संयोगते, प्रकट भयो मन भूप ॥  
 संकल्प विकल्प दोऊ उठे, ते मन शक्ति अनूप ॥  
 मन माया विस्मृति कियो, नाम विचित्रा तासु ॥  
 आच्छादन कर पुरुषको, विलसे देह विलासु ॥  
 मन माया बहु छल कियो, कीन्हो बहु विस्तार ॥  
 सुरति गयी निजरूपकी, प्रगट्यो तन हंकार ॥  
 इस प्रकारसे इस मनकी उत्पत्ति हुई ।

सद्गुरु कहते हैं हे धर्मदास ! शरीरकी इस भयानक राजा  
 मनकी दो स्त्रियाँ हैं तिनमेंसे एक प्रवृत्ति है । जिसमें यह मन  
 बहुत ही राग को प्राप्त हुआ है, अर्थात् उसके साथ अत्यन्त  
 स्नेह करता है ।

प्रवृत्तिवंशवर्णन ।

महामोह तेहि सम्भव सुत अति लायका ॥  
 गर्व अति बलवान विजय रण शायका ॥  
 महाक्रोध अनुजै तेहि निकट अधोरता ॥  
 लोभ संगेतहि ठाढ़ आशा अधिककठोरता ॥  
 तृष्णा वीर महाबलि अखिल संचारई ॥  
 को बांचे मेरी घात सो ऐसो विचारई ॥

जडता ताहि सखी संग मनकहँ राचई ॥

अहनिशि करत कोलाहल उभै ना छाजई ॥

टीका—मनकी प्रवृत्ति स्त्री है उसके पुत्रोंको बतलाते हैं, हे धर्म-  
दास ! उस प्रवृत्तिको सबसे बड़ा और योग्यपुत्र मोह उत्पन्न हुआ  
है । और दूसरा उसका पुत्र गर्व महाबलवान् और प्रवृत्ति की  
रक्षा करनेमें महा योद्धा रणबांकुरा है । महामोहका तीसरा  
भाई अर्थात् प्रवृत्तिका तीसरा पुत्र काम है और चौथा क्रोध  
है । ये दोनों बहुत ही मलीनता से पूर्ण हैं । मोहका पांचवाँ  
भाई और प्रवृत्तिका पांचवाँ पुत्र लोभ है जिसके साथ आशा  
और कठोरता दो बहिन रहती हैं । और तृष्णा वीरा भी उनके  
साथ है, वह महाबलवान है सर्वमें उसका संचार है, वह अपने  
मनमें ऐसा गर्व रखती है कि मुझसे कोई भी बच नहीं सकता ।  
और जडता भी उसी तृष्णा के साथ रहती है जो मनको  
अत्यन्त प्यारी है । मनकी अत्यन्त प्रीति के कारण वह जडता  
सदा कोलाहल करती रहती है अर्थात् सदा द्वन्द्व उठाया  
करती है ।

यद्यपि इस ग्रन्थ में प्रवृत्ति की संतानके वर्णन करनेमें बहुत  
कुछ भूल हुई है क्योंकि तृष्णा जो स्त्रीलिंग शब्द है उसको  
पुँल्लिंग करके लिखा है और हंसमुक्तावलीके प्रसिद्ध टीका-  
कार श्रीभजनदासजी की टीकामें भी ऐसी भूल पायी जाती है,  
तथापि यदि यह मानलिया जावे कि यह भूल ग्रन्थकर्ता और  
टीकाकारकी है सो ठीक नहीं है, क्योंकि वर्तमान कबीर-  
पंथ के साहित्य भंडार में बहुत परिश्रम करनेपर भी जब  
एक भी ग्रन्थ लेखकभट्टाचार्योंकी कृपासे शुद्ध नहीं मिलता  
है, तब ग्रन्थकार अथवा टीकाकारके ऊपर दोष कदापि

नहीं आ सकता । इस कारण मूल प्रबोधचन्द्रोदयनाटक जिसके आधारपर यह मोह और विवेकके युद्धकी कथा प्रचलित हुई है, उसके अनुसार प्रवृत्तिकी सन्तानका वर्णन नीचे लिखता हूँ । देखो श्रीअनाथदासजीकृत प्रबोधचन्द्रोदयनाटक--

दोहा-त्रिया युगल मनभूपके,तिन ढिग सब संपत्ति ॥

एक नाम प्रवृत्ति है, एक नाम निवृत्ति ॥

प्रथमै दल प्रवृत्तिको, वरणि कहौ विस्तार ॥

तेहि पाछे निवृत्तिको, वरणों सब परिवार ॥

प्रथमें पुत्र प्रवृत्तिके, भयो मोह भयभीत ॥

दूजो सुत उत्पति भयो, कामें सकल रणजीत ॥

महाक्रूर भौ तीसरो, क्रोधें नाम अतितेज ॥

चौथो अतिदारुण भयो, लोभें पापको एज ॥

दंभें पुत्र भयो पञ्चमो, छठो गर्व परियार ॥

सातें मदँ उत्पनि भयो, विकट वीर विकरार ॥

अष्टम पुत्र प्रवृत्तिके, नाम अर्धर्म कुरूप ॥

मुक्तिपंथते चरण गहि, डारत है भवकूप ॥

आठैं पुत्र प्रवृत्तिके, असत्य वासना धीर ॥

वर्णन करों कुटुम्ब अब, जो जाको सुत तीर ॥

मोहपरिवार ।

महामोहकी नारि प्रिय, मिथ्यादृष्टि प्रमान ॥

पुत्र तासु हंकार है, ममता बधू सुजान ॥

कामपरिवार ।

मदननारि रति प्रकट है, लालच सुवन बखान ॥

लोलुपता ताकी बधू, रंच नहीं बरमान ॥

क्रोधपरिवार ।

क्रोध नारि हिंसा असत, ताको सुत अविचार ॥

भूल वधू ताकी कठिन, पोषै सब परिवार ॥

लोभ परिवार ।

तृष्णा स्त्री लोभ की, ताको सुत है पाप ॥

चिन्ता त्रिय जाके चितै, करै सदा सन्ताप ॥

दम्भपरिवार ।

दंभ नारि आशा मलिन, ताको सुत पाखण्ड ॥

वधू अविद्या तासु तिय, भरमावे नौ खण्ड ॥

गर्वपरिवार ।

निन्दा वनिता गर्वकी, जाको अपशय पूत ॥

अपकीरति ताकी वधू, प्रकट निरंकुश धूत ॥

मदपरिवार ।

नारी मदकी ईषणा, जाके सुवन विरोध ॥

सा परधा ताकी वधू, मैटै उरको बोध ॥

अर्धम परिवार ।

अश्रद्धा नारि अधर्मकी, सुत असत्य बलवान ॥

विषयबधू आसक्ति पुनि, मैटै मुक्ति निधान ॥

आठ पुत्र कुटुम्ब यह, कह्यो भिन्न विस्तार ॥

सुता प्रिया प्रवृत्ति की, वर्णों तेहि परिवार ॥

जो अदया भगवान की, ताते भयो अज्ञान ॥

दीनी ताहि विवाहि सो, मोह हर्ष बलवान ॥

मिलि अज्ञान वासना, तिनते बहु संतान ॥

जेते लिखनेमो परै, तेते करौ बखान ॥

प्रथमै सुत संशय भयो, लै विक्षेप बहु भाव ॥

आलस नींद अनर्थ पुनि, रजतम कपट चवाव ॥  
 कर्म असंयम तापत्रय, नाना रोग विशाल ॥  
 यंत्र मंत्र नाटक घने, अरु प्रपंच जंगजाल ॥  
 और भ्रष्टता धृष्टता, व्याकुलता अति चाह ॥  
 भुक्ति कामना कृपणता, जनमन कर उरदाय ॥  
 अयश ईषणा विषमता, अकृपा कुटिलता नाम ॥  
 इत्यादिक और घने, कहे काम दुख धाम ॥  
 असत्य वासनाके भये, पुत्र प्रचण्ड अनेक ॥  
 सुता भयी पुनि जगमती, भूली कुलकी टेक ॥  
 पुत्र वासना को बली, असत्संग आलस्य ॥  
 लै विक्षेप मंत्री तिने, करि राख्यो नृप वस्य ॥  
 सेना बहुत मोहकी, वर्णन बने न सोय ॥  
 पलमें हरै विवेक बल, रहै ममता रस भोय ॥  
 महा कुन्यायी अति छली, चंचल बली कुटेव ॥  
 जग पोषक दोषक सुमत, करै मोह पद सेव ॥

छन्द-छाजतसेनमदमोहमंसा, क्रोध दारुणमटमहा ॥

आशातृष्णा तेहिभंडारी, विभौकी कांछा कहा ॥

टीका-सद्गुरु कहते हैं हे धर्मदास ! इस प्रकारसे प्रवृत्ति की सेना मोह, मद महावीर क्रोध से सुशोभित होरही है । और आशा, तृष्णा, भंडारी है जो चाहे कितना भी उसके भण्डारमें आवे किन्तु कभी उसकी तृप्ति नहीं होती है । जब मन

१ बाजीगरी हाथ चालाकीका काम । २ बेशर्मी निर्लेज्जता बेअदनी इस भ्रष्टताके स्थानमें एक पुस्तक में भ्रष्टता लिखा पाया गया है, यदि भ्रष्टता यहां माना जाय तो वह भ्रष्टताका विशेषण हो जायगा. जिसका अर्थ होगा आगे चलनेवाली भ्रष्टता और भ्रष्टता प्रधान है जहाँ किन्तु इसकी अपेक्षा भ्रष्टता शब्द यहां अधिक उपयुक्त है इस कारणसे भ्रष्टताही लिखा है ।

राजाकी प्रवृत्तिका यह ठाठमाट तब है मनको अन्य विभौकी इच्छा कहाँसे होवे ।

अथ निवृत्तिवंशः वर्णन ।

निवृत्ति दूजी अंगना जिहि तिहि मन राजा थोरो चहै ॥  
प्रवृत्ति पूजा गति न दूजा ताहि चित निशिदिन रहै ॥

टीका—मन राजाकी दूसरी स्त्री निवृत्ति है जिससे मन प्रेम नहीं करता क्योंकि मन प्रवृत्ति नामक स्त्रीमें ऐसा लुब्ध रहता है कि दिनरात उसके बिना मनको क्षणमात्रभी कल नहीं परता है ।

तेहि सुत जनेउ विवेक परम दृढ आसना ॥

सात्त्विक अस्त्र ले हाथ खड्ग सो शासना ॥

टीका—उस मन राजाकी निवृत्ति नामक स्त्रीमें विवेक नामका पुत्र उत्पन्न हुआ सो विवेक निश्चल और दृढ आसनवाला है और उसने अपने हाथमें सतोगुणका अस्त्र ग्रहण किया है ।

वस्तु विचार, क्षमा दया तेहि भ्राता भयो ॥

तेहिंको अनुज संतोष अतिहि आनन्द ठयो ॥

विद्या ताहि सहेली नीति बिचारई ॥

शील सनेह, सिखावन, पाठ सुधारई ॥

टीका—विवेक के और भी भाई बहिन उत्पन्न हुए । वस्तु विचार, क्षमा, दया, संतोष, विद्या, नीति, शील, सनेह, शिख-पन और अध्ययन इत्यादि निवृत्तिकी संतान इत्यादि प्रकट हुई । प्र० चं० ना० श्रीअ० दा० जी कृत ।

दोहा—अब रानी निवृत्तिको, वर्णों सब परिवार ॥

जाके श्रवण बिचारते, मिटै कुमति संसार ॥

सुत विवेक प्रथमे भयो, बड उदार गुण धाम ॥

दूजो वस्तु विचार पुनि, हरे कामना काम ॥

तीजे सुत धीरज भयो, अचल वीर सुखकन्द ॥

चौथो सुत संतोष पुनि, हरै सकल जग द्वन्द ॥  
 पञ्चमपुत्रसु सत्य है, मुक्ति धाम सुखरूप ॥  
 छठौं पुत्र पुनि शील है, लक्षण सबै अनूप ॥  
 धर्म पुत्र भयो सातवों, कुलमण्डन अतिधोर ॥  
 अष्टम सुत बैराग है, मेटै तापशरीर ॥  
 विष्णुभक्ति कन्या भयी, लक्षण सब गम्भीर ॥  
 सुवन सबै निरवृत्तिके, करै मोह उर पीर ॥  
 ये रानी निवृत्ति के करै, आठ पुत्र अति शूर ॥  
 भक्ति सुता कुलपोषिनी, करै कुमतिको दूर ॥  
 अब इनके सुत त्रिय बधू, बरणि कहौं तिन नाम ॥  
 मुक्ति पंथ अनुकूल सब, पुनि सुख प्रति अभिराम ॥

विवेकपरिवार ।

रानी रायविवेक की, ब्रह्मसुविद्या नाम ॥  
 पुत्र ज्ञान आनन्द त्रिय, ता असंग सुखधाम ॥

विचारपरिवार ।

रानी राय विचार की, निश्चय पूरण काम ॥  
 पुत्र नेम दृढता बधू, भय मेटै सुखधाम ॥  
 धीरज की त्रिय है क्षमा, हरै क्रोध को ताप ॥  
 पुत्र आर्जव गर्व हर, मुदिता बधू अलाप ॥

संतोषपरिवार ।

तृप्ति नारि संतोष की, जाको सुत आनन्द ॥  
 करुणा बधू अनूप है, भय मेटै सुखकन्द ॥

सत्यपरिवार ।

सत्यनारि निज साधुता, सुत निष्कपट उदार ॥  
 जिज्ञासा ताकी बधू, प्यारी सब परिवार ॥

शीलपरिवार ।

शील नारि लज्जा सुभग, प्रलय करै उरझूल ॥

सुयश सुवन कीरति बधू, शुभ मारग अनुकूल ॥

धर्मपरिवार ।

श्रद्धा नारि सो धर्म की, सुत प्रकाशता नाम ॥

सुता भयी सतबासना, बधू साधता जाम ॥

वैराग्यपरिवार ।

रानी निज वैराग्य की, उदासीनता नाम ॥

सुत अभ्यास निराशता, बधू सकल सुखधाम ॥

प्रवृत्ति सौत सिहात सो देखत परजरी ॥

सबहि सुनत हँकार पौरुष बातें करी ॥

धिग सुत तुव पुरुषार्थ मृतक लेखउँ ॥

सौतिन सुनत विदार मरण निज पेखउँ ॥

टीका—हे धर्मदास ! इस प्रकारसे मन राजाकी दोनों स्त्रियोंके परिवार हुए उनमेंसे प्रवृत्तिके वंशकी अत्यन्त वृद्धि होने पर भी वह निवृत्तिके वंश को देखकर सिहाती है । इससे अपने सब पुत्रोंको बुलाकर कहती है कि हे पुत्रो ! तुम्हारे पुरुषार्थ को धिक्कार है । सौतनके वंशकी वृद्धि देखकर मेरा कलेजा जलता है । इससे यातो तुम निवृत्तिके पुत्रोंको मारकर मेरेको संतोष दो नहीं तो अपनी मृत्युकी राह देखो ।

महामोह सुनि गरजेउ मातुल सुनियो ॥

तुव आज्ञा होय निपातों चितकितगूनियो ॥

विवेकहिं आदि सँहारू नेक न बाँचई ॥

करूँ निकटक राज प्रश्न मन राँचई ॥

छन्द-प्रश्न राचे कोइ न वाचे कटक देखत रिपु डरे ॥  
 ब्रह्माण्ड कंपे अखिल झंपे इंद्र दशदिश खरभरे ॥  
 विविधआयुध युत्थयुत्थप सुभट जहँतहँ तरजहीं ॥  
 पव पात सम अवघात मनो एकएकन गर्जहीं ॥

टीका—हे धर्मदास ! प्रवृत्तिके उपर्युक्त वचनको सुनकर मोहने कहा कि हे माता ! आप चित्तमें इतनी चिन्ता क्यों करती है ? आप आज्ञा देवें तो विवेक आदि निवृत्ति आदिके समस्त परिवारको नाश करदूँ । मेरे मनमें तो सदा ऐसी लगी रहती है कि, विवेक आदि सब को मारकर निष्कण्टक राज करूँ । अब तो आपके मनमें भी जब ये बात आई है और आपने मुझसे पूछा है तब मैं अपनी प्रबल सेना के साथ विवेकका सर्व नाश कर दूँगा । मेरी सेना ऐसी प्रबल है कि, जिसके तेजसे ब्रह्माण्ड भी कम्पायमान होता है । मेरे इस प्रबलसेनाको देखकरके शत्रुकी सेना कभी धीरज नहीं धारण कर सकेगी । मेरी सेना अखिल ब्रह्माण्डको आच्छादन करनेवाली है । इन्द्र जो देवतोंका राजा है वह भी मेरी सेनाको देखकर घबरा जाता है ॥

मेरी सेना के योद्धा लोगोंने नानाप्रकारके अस्त्र शस्त्र धारण किये हैं और एक २ बीरकी गर्जनाही ऐसी है जिसको सुनकर पवन के झपाटे लगनेके समान सब गिरते जाते हैं ।

हे धर्मदास ! इस प्रकारसे मोह अपनी शूरता और प्रताप का बखान करके, माताकी आज्ञा पाकर विवेकराजासे युद्ध करनेको खाना हुआ ॥

जननी कहँ शिर नाय समर शीघ्रहि चले ॥  
 युत्थप दंभ समाज कहत रिपु दलमले ॥

टीका--माताको नमस्कार करके दम्भके समाजको आगे करके मोह राजा विवेकके सन्मुख आया । तब विवेक उसकी चमक दमकको देखकर घबराने लगा । विवेकको घबराते देखकर निवृत्तिकी सहेली विद्याने निवृत्तिसे जाकर सब वृत्तांत कहा ।

विद्या जाय निवृत्तिहि बात जनायऊ ॥

तब सौतिन सुतन अनुज विरोधहि आयऊ ॥

टीका--विद्याने निवृत्तिसे कहा कि, तुम्हारी सौत प्रवृत्तिके पुत्र तुम्हारे पुत्रसे विरोध करके युद्ध करनेको आये हैं और ॥

चाहत बन्धु विमातहि तुरति घातऊँ ॥

छाडैं नेक न काहू सबहि निपातऊँ ॥

टीका--और वह ऐसी इच्छा रखता है कि, तुम्हारे सब पुत्रोंका नाश करके, एकको भी जीता न छोडै ॥

निवृत्ति निज दूतहिं धर्म बुलायऊ ॥

ताते सुत कह बुलाई भाव बुझायऊ ॥

टीका--विद्याकी बातको सुनकर निवृत्तिने अपने दूतद्वारा धर्म आदि सब पुत्रोंको बुलाकर उसने कहा कि,

बन्धु विमातिक धरि सो रणयुत्थ आवहीं ॥

समर सोई सुन ठयो पराजय पावहीं ॥

सुमता करि सब सुन्दर मंत्र विचारहुँ ॥

दुविधा अरि अज्ञान सो जानि सँभारहुँ ॥

टीका--निवृत्ति अपने पुत्रोंसे कहती है हे पुत्रो ! देखो तुम्हारे सोतेले भाई सब तुमपर चढ आये हैं और युद्ध करके तुम्हारा नाश

करना चाहते हैं इस कारण तुम्हें अब उचित है कि, परस्पर सुमति करके ऐसा उपाय विचारो जिसमें उनसे अपनी रक्षा कर सको ।

**दृढता दण्ड विमलचित धीरज दीजिये ॥**

**दया पताका साजि समर सुत कीजिये ॥**

टीका—निवृत्ति कहती है हे पुत्रो ! दृढता और राग द्वेष रहितता और धीरज द्वारा परस्पर एकमेक होकर दयारूपी पताकाको फहराते हुए तुम भी युद्धके लिये परस्थान करो ।

**छन्द-पाई शिक्षा भयी इच्छा भूमिरणसर सजि चलै ॥**

**आनन्द तबल बजाय तब रिपु सेन चाहत दलमलै ॥**

**मद मोह आदि विराजता सब ध्वजा ईर्षासजावहीं ॥**

**निजमूर्खताको दण्ड गहि ममता निशान बजावहीं ॥**

टीका—इस प्रकार जब निवृत्ति अपने पुत्रोंको आज्ञा दे चुकी तब विवेक राजा अत्यन्त दृढ इच्छाके साथ आनन्दका धौंसा बजाकर इस उत्साहके साथ सेना लेकर रणभूमिको चले मानो तत्कालही शत्रुके दलका नाश कर देंगे ।

विवेककी सेनाको ऐसे ठाटबाटसे आती देखकर मोह राजा अपने सब भाइयोंके साथ ईर्ष्याकी पताका स्वरूपकी अज्ञानताका दण्ड और ममताका निशान लेकर आगे बढ़ा ॥

**तब विवेक निजमन्त्री तुरंत हँकारेउँ ॥**

**कहु मन्त्री दृढ आगम समा विचारउँ ॥**

टीका—मोहराजाकी सेना रणमें प्रस्तुत देखकर विवेक राजाने अपने मंत्रियोंसे संमति पूछी कि, हे मित्रवरो ! समयानुसार विचार बतलाइये जिससे मोह राजाको प्राप्त कर सकें ।

सुमती कहे सुनु पुंगव मतिके आगरा ॥  
 समर बूझिके कीजे जगत उजागरा ॥  
 प्रथमहीं दूत पठाय नीति बहु विधि कहो ॥  
 नहि माने सतभाय तबहि आयुध गहो ॥

टीका--विवेक राजाके पूछने पर सुमतिने कहा कि, हे राजन् ! आप बुद्धिवान् हो विग्रह करनेमें जहाँतक हो विचार कर कार्य्य करना चाहिये । प्रथम दूत भेजकर मोह को बहुत प्रकार से नीति द्वारा समझाइये यदि वह मान जाय तब तो ठीक ही है और नहीं तो फिर पीछे हथियार उठाकर युद्ध करना चाहिये ॥

शील दूत कहँ बोली शिश्वापन दीनेऊ ॥  
 चल्यो तुरत शिर नाय बिदा जब कीनेऊ ॥

टीका--हे धर्मदास ! जब सुमतिने इस प्रकारसे कहकर नीति का मार्ग बताया तब विवेक राजाने शीलको बुलाकर कहा कि, हे शील ! आप दूत बनकर मोहराजा के पास जाओ । और जो कुछ मोह राजासे कहना था वह सब अच्छी प्रकारसे शीलको सिखाकर बिदा किया । फिर तो शील विवेकके पाससे चलकर मोह राजाके दरबारमें पहुँचा ॥

मोह आदि भ्राता जे सबहि सुनायऊ ॥  
 बन्धु विमात संदेश सो सबहि बुझायऊ ॥

टीका--शील दूतने मोह राजाकी सभामें जहाँ सब भाइयों सहित मोह राजा बैठा था पहुँच उसके सौतेले भाई विवेकका संदेशा सुनाया ॥

कारण कौन विरोधेऊ बोलहु नागरा ॥  
 बन्धव सम होय कीजे राज उजागरा ॥

टीका—शीलने मोहकी सभामें कहा कि, हे चतुर राजा मोह ! किस कारणसे आपने विरोध ठाना है सो कहिये, आपको तो सब भाइयोंके साथ मिलकर पूर्ण शक्तिके साथ राज्य करना चाहिये । देखिये तो—

मन राजा तुवतात त्रिभुवनपति स्वामिया ॥

शुभ अरु अशुभको कारण अन्तर्यामिया ॥

अनुमादिक अनुगामि अनुज त्रिदशपति ॥

तेहिके सुत कुमति कहा कीनी गति ॥

टीका—आपके पिता मनराजा जो हैं सो स्वर्ग ( सतो गुण ) मृत्युलोक ( रजोगुण ) और पाताल ( तमोगुण ) के राजा हैं तीनों लोकमें उनका आन फिरता है । और वही मनराजा शुभ अशुभ दोनोंका कारणस्वरूप हो अन्तर्यामी बना हुआ है ? हे मोह राजा ! आपके पिता आपके पीछे २ सदा आपको मद ( काम ) दते रहते हैं और जहाँ २ आप जाते हो सदा आपके पीछे वह भी जाते हैं । और आपके पिताका जन्म आपके पश्चात् होकर तेरहों भुवनके राजा बनते हैं । ऐसा समर्थ राजा मन उसके पुत्र होकर आपने यह कुमति क्यों ठानी है ।

अनुमादिक शब्द अनु और मादिक शब्दोंके संयोगसे बना है इसका अर्थ है अनु = पीछे । मादिक = मद करनेवाला अर्थात् पीछे जो मद अर्थात् काम करे उसे कहते हैं अनुमादिका । यहाँ मन जब प्रवृत्तिमें लुब्ध होता है तब मोहकी प्रबलता होती है । मोहकी प्रबलता होने पर मन सदा उसको सहायता देता है ।

अनुगामी शब्दका अर्थ है पीछे चलनेवाला, जब मन प्रवृत्तिमें लुब्ध होता है तब सदा मोहके पीछेही पीछे दौड़ता रहता है । अर्थात् जहाँ मोह दृढ़ होता है वहाँही मन भी लुब्ध होता है उससे अलग नहीं होता ।

१ अन्तर्यामी कहिये सबके अन्तर अर्थात् अन्तःकरणका जाननेवाला हो ।

अनुज कहते हैं ( अनु = पीछे, ज = जन्मना ) पीछे जन्म लेनेवालेको सो यहाँ मन का अनुज कहनेका तात्पर्य यह है कि जहाँ मोह नहीं हो वहाँ मन भी नहीं होता । इस शरीरमें मोह दृढ होनेहीसे मन की विशेष प्रवृत्ति इसमें होती है ।

त्रयोदशपति ( त्रयोदश = तेरह, पति = राजा ) तेरह जो पांच ज्ञानेन्द्री और पांच कर्मेन्द्री तथा बुद्धि, चित्त, अहंकार इन तेरहों का राजा है । अर्थात् जब ये इंद्रियां विषयमें प्रवृत्त होती हैं तब मनमें उन विषयोंका राग उत्पन्न होता है । इन तेरहोंको पश्चात् उन विषयोंमें मन प्रगट होने पर भी आप सबका राजा बन जाता है । अर्थात् प्रथम इंद्रियाँ विषय का ग्रहण करती हैं पश्चात् मन उनके ऊपर राज करने लग जाता है, इंद्रियाँ सब मनकी आज्ञाकारिणी बनती हैं और मन उनका शासक राजा बनता है ।

छंद-कुमति कीन्हो अयश दीन्हो बन्धु चित्त धरिबूझिये ॥ अंत गर्व न रहत काहू मिथ्या आश न कीजिये ॥ भुनत मोह राज समाज युत्थप क्रोध दारुण खर भरयो ॥ चाहत संधारन दूतको जिमि आज्य अनिल में परयो ॥

टीका-शीलने कहा है मोहराज ! ऐसे प्रतापी जो आपके पिता मन राजा हैं उनको भी आपने अपने इस विरोध से अयशका भागी बनाया है । सब यही कहेंगे कि देखो मनराजा ऐसा हो गया है कि अपने पुत्रोंकोभी सम्हाल नहीं ले सकता, उसके पुत्र सब स्वतन्त्र बनकर परस्पर कटे मरते हैं । इस हेतु हे मोहराजा ! आप कुमतिके कहनेमें न आकर बन्धु विरोध मत कीजिये । और यदि इस बात को नहीं मानते हैं तब इस बातको स्मरण

रखिये कि, गर्व किसी रहा नहीं है इस लिये मिथ्या आशाको छोड़कर सब भाई प्रेमपूर्वक राज्य करो ।

हे धर्मदास ! शील दूतके उपर्युक्त शिक्षाप्रद वचन सुनकर मोह राजा सहित उसके सर्व समाज और सेनाभरमें कठिन क्रोधका आविर्भाव हुआ । सब चारों ओरसे लाल २ आखें करके शीलको इस प्रकार देखने लगे मानो उसे नाश करना ही चाहते हैं । शीलदूतको विवेक राजाने तो समझा बुझाकर मोहको युद्धसे रोकने और सन्धि कराने के लिये भेजा था, किन्तु दूतके वचनने मोह के समाजमें उल्टाही फल प्रगट किया । जिस प्रकार जलती हुई अग्निमें घृत पड़नेसे उसकी ज्वाला और भी बढ़ती है उसी प्रकार मोहकी सेनाका क्रोध अधिक बढ़ गया । मोह राजाने उसी क्रोधके आवेशमें शीलसे कहा ।

जाय कहौ निजनाथही जो उबरन चहै ॥

भागै तजि पितुराज मौनव्रत गहि रहै ॥

टीका—मोहने कहा हे शील ! अपने राजा से जाकर कहो कि, यदि वह अपना कुशल चाहता है तो चुपचाप पिता (मन) के राजसे निकल कर अन्यत्र भाग जावे । अथवा यदि राज्यमें रहनाही है तो मौनव्रत धारण करके अपना कालक्षेप करले ।

मोह राजाके ऐसे गर्वित वचन को सुनकर शीलदूत विवेक राजाके पास पहुँचा ।

दूत वचन प्रति उत्तर आय सुनायऊ ॥

सुनत विवेक समाज निशान बजायऊ ॥

टीका—शीलने विवेक राजाके सम्मुख आकर मोह राजाके दरबारमें जो जो कुछ बीता था सब सुनाय दिया । जब विवेक-

ने देखा कि, मोहराजा किसी प्रकार नहीं मानता तब युद्धके लिये प्रस्थान करनेकी आज्ञा देदी । आज्ञा पातेही निशानदार सब से पहले निशान लेकर आगे निकला और उसके साथ ही साथ बाजेवाले भी रणका बाजा बजाते हुए खाने हुए ॥

**महा मोह कुलाहल रिपुदल आयऊ ॥**

**अहं डिम्भ युत्थ व्याकुल बहुत सिधायऊ ॥**

टीका—इधर तो विवेक राजाकी सेनाने चढायी की । उधर शील दूतको कडी २ बातोंको सुनाकर मोह राजा विवेकराजाको भय-भीत जानकर आनन्द विलासमें अचेत होगया । इतनेहीमें विवेक राजाके दलके निकट पहुँचनेपर दूतोंने जाकर मोह राजा को समाचार दिया कि, विवेक राजाकी सेना युद्ध करनेके लिये सजग होकर आगयी है । दूतके वज्र समान वचनको सुनते ही मोह राजाकी सेनाभरमें कोलाहल मगचया । अहंकार सेना और दम्भ दोनोंही सेनापति बहुत व्याकुल होगये और अपनी सेनाको लेकर वेभी आगे बढे । डिम्भ शब्द दम्भ शब्दका अपभ्रंश है ॥

( मोहवश हो देहाभिमानमें पडे हुए विषयासक्त मनुष्योंके हृदयमें सत्संग और सत्शास्त्रोंके श्रवण द्वारा जब विवेक प्रवेश करने लगता है उससमय उसके हृदयमें घबराहट उत्पन्न होती है । )

**चल्यो तुरत गहि शूल कुबुद्धि आयुध गह्यो ॥**

**समर युक्त है आयो अघमन्त्री कह्यो ॥**

टीका—घबराहटमें पडाहुआ मोहराजा पापमन्त्रीके कहनेसे स्वयम् शूल और कुबुद्धि शास्त्रोंको धारण कर युद्ध करनेके लिये तैयार हो आया । राजाको स्वयं रणमें जानेके लिये प्रस्तुत

देखकर सेनापतियोंमेंसे काम सेनापति हाथ जोड़कर कहने लगा॥

कामसेन सेनापति तेहि शिर नायऊ ॥

हे स्वामी केहि कारण निजहि सिधायऊ ॥

टीका—सेनापति कामसेन शिर नवा करके मोह राजासे कहने लगा कि, हे स्वामी ! आप स्वयम् युद्धके लिये क्यों जाते हैं?

आज्ञा करौ विवेकहि गहिलै आवउँ ॥

भ्राता सब सेनापति तुरत बँधावउँ ॥

टीका—हे राजन् ! यदि आप आज्ञा करो तो राजाको उसके सब भाइयों और सेनापतियों सहित बांधकर ले आऊँ । कामसेनकी युक्ति और उत्साहपूर्वक वचनको सुनकर मोहरा-जाने उसे युद्धमें जाने की आज्ञा दी । तब--

आयसु मांगि चले तब रिपुदल आयऊ ॥

रदपट फरकत आतुरवचन सुनायऊ ॥

टीका—मोह राजासे आज्ञा मांगकर काम विवेकराजाके दलके सम्मुख आकर उपस्थित हुआ । उस समय कामके होंठ क्रोधके मारे फरक रहे थे । क्रोधके आवेशमें आकर कामने विवेक-राजाकी ओर सम्बोधन करके बहुत आतुरतासे कहना आरम्भ किया । रद = दाँत, पट = परदा अर्थात् दाँतोंका पर्दा होंठ ॥

रे विवेक तोहि कच धरि तुरत संहारि हैं ॥

मोहि देखत कौन सो मूल उचारि हैं ॥

टीका—काम विवेकराजासे कहता है—रे विवेक ! देख अभी तेरे बाल पकड़कर मैं तेरा नाश करदेता हूँ । देखें कौन मेरे सम्मुख शब्द भी बोल सकता है ? मैं तेरा मूल नाश करता हूँ ।

( अन्तःकरण जब शुद्ध होजाता है तब उसी शुद्ध अन्तःकरण

में विवेक प्रकट होता । इस कारण विवेकका मूल शुद्ध अन्तः-  
करण है जिस समय मनुष्यको काम उत्पन्न होता है उस समय  
अन्तःकरण मलिन वासना और देहाभिमानसे पूर्ण होजाता है  
तब शुद्धान्तःकरणका अभाव होकर मलिन अन्तःकरणका  
प्रादुर्भाव होता है ) ॥

**मूल गही उपार डारूँ मोसन करत सरभरै ॥**

**विचार सुनि बोलत विवेकहि संपुट युगकरधरै ॥**

टीका—काम कहता है रे विवेक ! तू क्या मेरी बराबरी करना  
चाहता है ? मैं तेरे मूलकोही उखाड़ कर फेंक दूंगा । कामके  
ऐसे अहंकार युत वचनको सुनकर विचारने राजा विवेकसे  
हाथ जोड़कर विनय किया कि—

**सुनु सुमतिनायक परमलायक दास कौतुक देखिये ॥**

**काम क्रोध अभिमानिया नट चेटका सम लेखिये ॥**

टीका—हे सुमतिके मालिक परम योग्य विवेकराजा ! इन  
काम क्रोध और अभिमानादिकोंको नाटकी चेटकियोंके समान  
जानिये । इनका बलही क्या मुझ दासके कौतुकको देखिये ।  
इस प्रकार विनय करके और विवेककी आज्ञा लेकर विचार  
रणमें कामके सम्मुख जाकर उपस्थित हुआ ॥

**एक दिशि गर्जत काम विचार तब उभय दिशा ॥**

**काम करत बल जब अंत तब तरजत रसा ॥**

टीका—हे धर्मदास ! अब एक ओर तो महा दुर्धर्ष काम गरजने  
लगा और दूसरी ओर विचार अपना प्रकाश फैलाने लगा ।  
अब दोनोंका युद्ध होना आरम्भ हुआ । कामने जब अपना पौ-  
रुष कहके सुनाया, तब विचारने उसको तुच्छ बताया विचारके  
मुखसे तिरस्कारके वचन सुनकर काम कहने लगा ॥

रे विचार मतिहीन सकल वशि मैं कियो ॥

ब्रह्मा विष्णु महेश सबहि ताजन दियो ॥

टीका—काम कहताहै रे मतिहीन विचार ! तेरी क्या विसात है, मैंने सब चराचरको अपने वशमें कर लियाहै । औरकी कौन कहै ब्रह्मा विष्णु शिव आदि सबको मैंने ताजन दिया है, ( माराहै ) । इतनेही नहीं मेरे बलका प्रताप तू और सुनले ।

सुरपति शसि द्वि राते गौतम त्रिय कही ॥

विवेक विचार जो थाके बासा मैं गही ॥

टीका—रे विचार ! सुन जिस समय मैंने इन्द्र और चन्द्रमा को वश में किया, तब उनकी बुद्धि नष्ट होगयी, विवेक विचार सब जाता रहा और मेरी आज्ञासेही परम पवित्र गौतम मुनिकी पतिव्रता स्त्रीको भ्रष्ट किया । उस समय भी मैंने तुम दोनों ( विवेक और विचार ) को पराजय किया था । इतनी ही नहीं और भी सुन ।

व्यास पिता मीन दुहिता रतिबर बस कियो ॥

सुमन शरासन बाण शिवहि बेध्यो हियो ॥

टीका—रे विचार व्यासके पिता परमज्ञान और विवेक विचार में प्रसिद्ध जो पराशर ऋषि थे उन्होंनेको जब मैंने अपना बाण मारा तब वहाँ भी तुम्हारा कोई वश नहीं चला, उन्होंने मछली के पेट से निकली मत्स्यगन्धा ( मच्छोदरी ) से नदी के बीचमें भोग किया । और जब मैंने अपने बाणका लक्ष्य शिवजी को बनाया तब उन्होंने कामातुर होकर मोहिनी को पकडने की इच्छा की ।

दोहा—कहि कहाय मनसिज हस्यो, बोल्यो वचन उदार ॥

मो सम्मुख जलपै कहा, मेरो बल अपार ॥

मो रति अति दुस्तरण लखि, जीतैं मोहिं जग कौन ॥  
 ज्ञान विवेकै आदिदे, लखत मोहिं करि गौन ॥  
 पग नहिं टिकत सुधर्मको, नहिं धीरज ठहराय ॥  
 मेरी दृष्टि परतही, वैरागो नशि जाय ॥  
 मैं मन हरयो विरञ्चि को, निज पुत्री वश कीन ॥  
 शतमख द्विजजाया निरखी, भयो परम आधीन ॥  
 है कोतो बल अंग तुव, अरे सुभट कहु मोहि ॥  
 मेटों मार विलम्ब नहिं, प्रलय करतहौं तोहि ॥  
 पछितान्यो कांण्यो हृदय, शोचत वस्तु विचार ॥  
 हौं निर्बल वैराग बिन, अहै सबल अतिमार ॥  
 वस्तु विचार फिरे तबै, महा समर भय मान ॥  
 तुरते राय विवेक पहुँ, बन्दन कीन्है आन ॥  
 मनसंकोचि दृग नीच करि, कहत वचन नृपपास ॥  
 मेरो बल पहुँचे नहीं, निष्फल भयी सब आस ॥  
 तब मंत्री सत्संग कर, औ दूजो अभ्यास ॥  
 उत्तम मंत्र विचार के, कहत नृपति के पास ॥  
 मकरध्वज भुज बल अमित, बाक बीर समरत्थ ॥  
 वस्तु विचार महाबली, करे ताहि निजहत्थ ॥  
 दीजै ताहि सहायको, भक्ति ज्ञान वैराग ॥  
 विजयकरे रण सहजही, वस्तु विचार बडभाग ॥  
 सुनि विवेक मन सुख भयो, मान्यो मंत्र हिय जु ॥  
 तीनों तुरत बुलाइके, ताके संग किय जु ॥  
 बल पायो फूलो हृदय, चले समर समुहाय ॥  
 मनसा भूमि सुहावनी, रचे युद्ध तहँ जाय ॥

ठाढो सहित सहाय तब, मदन वीर बलवान ॥  
 दृष्टि परचो वैराग जब, कछुक दृष्टि सकुचान ॥  
 वस्तु विचार बोल्यो तबै, महाबली रण गाज ॥  
 सोहैं करत विवेककी, कित जैहैं रिपु भाज ॥  
 महाकोप करि बोल्यो, तबहीं सबल अनंग ॥  
 मो सन्मुख एतो बकै, करौ क्षणकमें भंग ॥  
 कुसुम धनुष वर हाथले, करों बाण सन्धान ॥  
 सकल अंग पलमें हरैं, मेरो बल अप्रमान ॥  
 छूटे शर जो समर के, भयो युद्ध भयभीत ॥  
 गावत युगल समाज तहैं, रणरसमत्त जु गीत ॥  
 तब विचार वैरागसो, बूझत मंत्र विचार ॥  
 अहौ बन्धु कीजे कहा, बडो सबल यह मार ॥  
 तब वैराग विचार के, दीन्हो मतो अनूप ॥  
 अहो बन्धु शोचत कहा, शोधो शुद्ध स्वरूप ॥  
 जग मिथ्या रजु सर्पवत, सत्य ब्रह्म निरधार ॥  
 छुद्र निंद्य नहिं चित धरो, हरो अनंग विकार ॥  
 जब वैराग महा बली, दीन्हो मतो अभंग ॥  
 वस्तु विचार चल्यो तबै, धरि उर परम उमंग ॥  
 रे निलज्ज पापी कुटिल, दुर्बुद्धी धृक तोह ॥  
 कहा वस्तुविचार ने, दुष्ट पिसन जन मोह ॥  
 कहा मार अतिदर्प करि, मैं मन मोह्यो भूप ॥  
 शंकरको मन मोहेऊँ, धरचो मोहिनी रूप ॥  
 मैं पराशर दहन कियो, रावण को घर खोय ॥  
 शृङ्गी ऋषि वनमें छल्यो, परे त्रिया वश सोय ॥  
 जीत्यो एक कटाक्षमें, विश्वामित्र सुधीर ॥

देवअंगना संग लै, छूट्यो धीर शरीर ॥  
 वस्तु बिचार बोल्यो तबै, अब जान्यो तुव भेद ॥  
 कहा नारि जहँ गर्ब तोही, अस्थि मांस त्वच मेद ॥  
 यह मलकी पुतली प्रगट, नख शिख भरी विकार ॥  
 प्रकट निरंतर मल सबै, अष्ट याम नव द्वार ॥  
 तासों संगति जो करै, अति मलीन सो जान ॥  
 शूकर विष्टा अशुभ योनि, कह तिनको परमान ॥  
 पुनि मनसिज बोलैं तबै, सुनहू वस्तुबिचार ॥  
 कियो भोग नहिं नारिको, वृथा जन्म संसार ॥  
 बडो पदारथ नारि जग, विनु तिय धाम न काम ॥  
 ताको धर्म कछु न सधे, जाके घर नहिं बाम ॥  
 ताते त्रिय सो धन्य है, तिहिं पुर देखु निहारि ॥  
 सावित्री अज विष्णु लै, उमा लिये त्रिपुरारि ॥  
 कहै विचार यद्यपि अहै, ब्रह्मादिक ढिग बाम ॥  
 मो सहाय तद्यपि सबै, सदा मुक्ति निःकाम ॥  
 सनकादिक मुनि जनकसे, नहिं चितवत तुव रश्च ॥  
 वस्तुविचार स्वरूप लहि, नाशै जगत प्रपञ्च ॥  
 गयी खबर तेहि भूलि वह, रे निलज्ज मदमत्थ ॥  
 हनूमान यक क्षणकमों, शंकर लायो हत्थ ॥  
 उठ्यो मदन तब कोपकरि, गह्यो बेगि कर चाप ॥  
 इषुवर्षा लाग करन, वर्णत नारि प्रताप ॥  
 कञ्चन सो तन भूल मले, दृग कमलनके भाय ॥  
 ऊँचे उरज विराजहीं, को न देखि ललचाय ॥  
 चन्द्र वदन तन क्षीण करि, जंघ केदली समान ॥

तापर चीर सुगन्ध बहु, भूषण भूपति जान ॥  
 विकट दृष्टि जबहीं करै, सुर नर मुनि वश होत ॥  
 कठिन कटाक्षै जब भिदौ, तब कहँ ज्ञान उदोत ॥  
 पुनि विचार बोल्यो तबै, जहँ तिय तोहि गुमान ॥  
 नरक परे तेहि संगते, संगति नाशै ज्ञान ॥  
 सोरठा-नारी वरने रूप, दुष्ट चित्त विष सो भरी ॥  
 वरणे को कवि अनूप, चन्द्र वदन कञ्चन तनय ॥  
 दोहा-अहै अस्थिको पींजरा, चाम लपेटे जाहि ॥  
 ऊपर चादर रंगि दई, भीतर विष्टा आहि ॥  
 नंगी करि जो देखिये, यह तन सुन्दर रूप ॥  
 यामो कछु धोखो नहीं, प्रकट पिशाच स्वरूप ॥  
 पृथक अंग जो देखिये, रुचिर अभूषण गन्ध ॥  
 तब मलीन चर कीच सो, भरी देखिये रन्ध ॥  
 विष सों ढिग गुण अग्निसो, चितवनि बाण समान ॥  
 हित सों ढिग मन मिलन सो, सुख चुरैल पकवान ॥  
 सो नर पावन है सदा, जो न करै तिय साथ ॥  
 धरे पखौवा मोरके, नन्दनन्द हू माथ ॥

प्रबोध चन्द्रोदय

बोले वस्तु विचार मूढ नहिं बूझई ॥  
 अंध चक्षुविहीन निपट नहिं सूझई ॥  
 कौन पुरुषको नारीलिंग उभयो कहां ॥  
 आतम ब्रह्म स्वरूप सबनमें रमिरहा ॥  
 कित अनंग कित संग विवेक ते पाइये ॥  
 सच्चिदानंदसर्वव्यापक चित्तमें ध्याइये ॥

भेद अभेद दोऊ सम ज्ञान विचारहू ॥  
अंत अवस्था जानि सोई निरवारहू ॥

टीका—कामके डींग मारनेको सुनकर वस्तु विचारने कहा रे मूढ़ काम ! तू मूर्ख है तेरेको समझ नहीं पडता है, तू अन्धा है तुझको कुछ सूझता नहीं है ॥

एकही ब्रह्म आत्मस्वरूप होकर जब सबमें रमरहा है तब स्त्री और पुरुष यह दो लिंग कहाँ हैं । जब एकही सच्चिदानन्द सबमें व्यापक हो रहा है तब कहां काम है और कहां रति है । जिसने इस प्रकारसे निज स्वरूपको विवेक की सहायतासे जानकर भेदाभेद को नाश कर दिया है उसके लिये तेरा अस्तित्वही नहीं तब तेरा वश क्या । स्वरूपज्ञान प्राप्त होतेही तेरी अंत अवस्था आजाती है फिर तेरा बल उसके ऊपर नहीं चलता । किस दृष्टि को धारण करनेसे तेरा बल नहीं चलता सो सुन । छन्द—निरवारि देखे छानि लेखे दुतिय नहि कोई कहा ॥

नरवत इत उत करत जहँ तहँ ब्रह्म सब मो रमि रहा ॥

टीका—विवेकी पुरुष ब्रह्म विचारको प्राप्त करनेके लिये जब अन्वयव्यतिरेक करके स्वात्मज्ञानको जानता है और अपने प्राप्तज्ञानकी परीक्षाके लिये सर्व शास्त्र और आचार्योंके मतको छानता है तब उसे विचार ज्ञान द्वारा स्वात्म-निश्चयात्मक प्राप्त होता है जिससे वह सर्व स्त्री पुरुष जड चैतन्य सब ही एक ब्रह्मकी ही लीला देखता है । जिस प्रकार नटको जाननेवाला पुरुष उसके अनेक स्वांगोंमें भी उसे नट ही जानता है, उसे उसके स्वांगोंमें दूसरा भाव कदापि नहीं होता उसी प्रकार ब्रह्मतत्त्व को जाननेवाले पुरुषकी दृष्टिमें जब द्वितीया है ही नहीं है तब तेरी अस्थिति कहां है ॥

इत काम सुनिके अस्र डारे आनिके चरण पर्यो ॥  
विचार ब्रह्म उर्द्ध वीर्य्य मोह भय वश खरभर्यो ॥

टीका—हे धर्मदास ! वस्तु विचारके निर्मल ब्रह्मज्ञानरूपी बाणसे विंथाहुआ काम तेजहीन हो गया और अपने सर्व अभिमान और घमण्ड को भूलकर विचारके आगे अपना हथियार डालकर उसके आधीन होगया । उसके आधीन होतेही उसकी स्त्री रति आदि सब आकर विवेकरायके आगे माथा नवाकर अपने सब पराक्रम छोडकर आधीन होगयी ।

( जिस समय मन कामातुर होता है उस समय ब्रह्मविचार द्वारा इसे मारनेसे वीर्य्यका बल जिसके बलसे काम अपना पराक्रम दिखाता है एकदम शान्त हो जाता है । )

कामको मरते देख मोहराजाके दलमें खलबली मचगयी  
स्वयम् मोह भी भयभीत हुजा तब—

क्रोध मोह सुनितुरतही निजबल भावेऊ ॥

मोसन करि संग्राम कवन पत राखेऊ ॥

विचार विवेक सहित सब सेन संघारि हौं ॥

करौं निकंटराज वचन प्रतिपारि हौं ॥

टीका—हे धर्मदास ! कामसेनके मरने का समाचार और उसके मरनेसे राजाके भयभीत होनेकी खबर जब क्रोधको पहुँची, तब वह उसी समय रणके लिये तैयार होकर मोहराजाके निकट जाकर कहने लगा हे राजन् ! क्या आप जानते नहीं हैं कि, मुझसे संग्राम करके किसीकी पत बची नहीं है । मैं तो सबको जीतने-वाला आपकी सेवाके लिये तैयारही हूँ तब आप एक काम—

---

१ मरना और शत्रुके अधीन होना इन दोनों बातोंमेंसे आधीन होजाना मान अपमान सूचक होने से मृत्युसेभी अधिक है इस कारण “मरते देख” लिखा है ।

के मरने से ऐसी चिंतामें क्यों डूबे हुए हैं । देखिये प्रतिज्ञा करके कहता हूँ कि, अभी संग्राममें जाकर विचार विवेक सहित उसकी समस्त सेनाका नाश करके आपका राज्य निष्कण्टक बना दूंगा । आप किसी प्रकारकी भी चिंता न करें । इस प्रकार अपनी बड़ाई आपही करके रणभूमिमें जाकर उपस्थित हुआ ।

दोहा—मोह भूप यह सुनतहि, होगया व्याकुल अंग ॥

बूझे मन्त्रिन से यहै, जूझे बन्धु अनंग ॥

बडो सुभट मोसे नमो, हुतो सहस कन्दर्प ॥

मोजीवत सो हत गयो, दुस्तर कठिन जो सर्प ॥

महामोहको वचन सुनि, मोह उठयो गण गाजि ॥

मेरे बन्धुहि मारिके, कित जैहें रण भाजि ॥

मेटैं मारि विवेकमन, ज्ञाने देहु बहाय ॥

शील सत्य संतोष सब, चितवत जाहिं पराय ॥

हौं जब प्रगटो तेज है, संग पुत्र मम चार ॥

व्याकुलकरि वैराग्यको, हरौ भक्ति परिवार ॥

असत्संग मन्त्री कहै, हे प्रभु बडभट क्रोध ॥

आयुस जाको दीजिये, विजय करै रण बोध ॥

हरष्यो मोह नरेश तब, सुन्यो क्रोध बल शूर ॥

आज्ञा तब रणको दर्ई, करौ रिपुहि चकचूर ॥

चल्यो क्रोध वंदन कियो, प्रभु आज्ञा धरि माथ ॥

आइगयो रणभूमिमें, दलबल लीन्हें साथ ॥

टोका—क्रोधका रणमें आगमन सुनकर विवेक राजाने भी विचार करके अपना योद्धा भेजा ॥

तब विवेक क्षमा कहँ आयसु दीन्हिया ॥

सुभट दोऊ संग्राम समागम कीन्हिया ॥

टीका—विवेक राजाने मंत्रियोंसे विचार करके क्रोधके सन्मुख क्षमाको संग्रामके लिये भेजा । अब दोनों ओरकी सेनाके बीचमें एक ओरसे महा विकाल क्रोध और दूसरी ओरसे महा-कोमलांगी परमशान्त क्षमाका युद्ध आरंभ हुआ ॥

दोहा—नृप विवेक विस्मित भयो, सुनतहि क्रोध प्रभाव ॥

बूझ्यो मंत्रिनसे यहै, कीजे कौन उपाय ॥

दियो मंत्र सत्संग वर, धीरज अचल सवीर ॥

क्षमा नारि मन भावती, पुत्र आर्य्यव धीर ॥

धीरज रु क्षमा पठायो, ज्ञान भक्ति ता संग ॥

तेज क्रोधको सहजही, क्षमा करे तन भंग ॥

धीरज क्षमा विदा कियो, पुत्र आर्य्यव जान ॥

दीन्हें सकल सहायको, विमल भक्ति अरु ज्ञान ॥

धीरज धरि धीरज चल्यो, गयो आप रणभूमि ॥

जहाँ क्रोध गर्जत रह्यो, नयन मद झूमि ॥

मिलि दृष्टिसे दृष्टि जब, भयो क्रोध रिस अंग ॥

गरज्यो सन्मुख जायके, मारि करौं बल भंग ॥

क्षमाको सन्मुख लडनेके लिये आया देखकर क्रोध गरज कर कहने लगा ।

क्रोध कहे सुनु भीता मोहिं न जानसी ॥

कम्पित है त्रिलोक मरण निज ठानसी ॥

टीका—क्रोधने कहा हे डरपोक क्षमा ! क्या तू मुझे नहीं जानती है कि, मेरे भयसे तीनों लोक कम्पायमान हो रहे हैं ऐसा जानकरकेभी तू मरनेके लिये मेरे सामने क्यों आयी है ॥

क्रोध सँघारेउ छितिपतिराज जित कित कियो ॥

क्रोधविवश सुरलोक दैतन जहरहि दियो ॥

क्रोध कटक अतिदारुणको आडो तोही ॥

तेहिको होत संघार मम दरेरा पर जोही ॥

टीका-क्रोध कहता है कि, हमने असंख्य राजाओंका नाश करके उनका राज तितर वितर करदिया है । हमारेही कर्तव्यसे देवोंने राक्षसोंको विष पिला दिया था । हमारी सेना ऐसी प्रबल है कि जो इसके सम्मुख आता है उसका ऐसा नाश होजाता है कि कहीं पता भी नहीं लगता । भला ऐसी बिकट सेनाके समक्ष तू क्या वस्तु है और तेरा रक्षक कौन है कि तू मेरे सम्मुख आयी है ॥

दोहा-कहा बापुरी भक्ति है, कहा बापुरो ज्ञान ॥

कहा बापुरी क्षमा तू, कहा तोहि गुमान ॥

कहा नृपति तुव रंक है, कहा धर्म संतोष ॥

सम्मुख मेरे ना टिकै, जब चितवो भरि रोष ॥

इस प्रकार कहकर फिर क्रोध कहने लगा ।

माता पिशाची कुजन बन्धु करनकी सामानते ॥

गुरु कौन बापुरा वदन देखुँ मोहि सँ बडज्ञानते ॥

निज नारिको अपमान करि वृषली सो लोकसमाजहै ॥

क्षण सुरति ते तेहि काटिकेतब करुं राज विराज है ॥

टीका-हे क्षमा ! मेरे पिता राजा मनने अपनी स्त्री निवृत्तिका अपमान करके उसको लौंडीसे भी नीच गतिको पहुँचा दिया है, जिससे समाजमें वह पिशाचनीके समानही आदरको पाती है । और तेरे भाई जो विवेक आदि हैं ये तो महा दुष्ट हैं और तू तो तेजहीन साक्षात् वर्णसंकर समान देख पडती है । हाँ तेरे-को मेरे सम्मुख आनेकी शिक्षा देनेवाला गुरु कौन बापुरा है । क्या वह मुझसे अधिक ज्ञानी है ? अब देख क्षणमात्रमें दृष्टि डालतेही तेरे सब परिवारका नाश करके निवृत्तिका नामही मिटा देता हूँ ॥

दोहा—तबै भक्तिको बोलि ढिग, कहै क्षमा मुसकाय ॥  
 वचन क्रोध कै सुनतहि, तुरतहिं देव बहाय ॥  
 कोपि क्रोध बोल्यो तबै, धिग धिग है तुव मात ॥  
 नाम निवृत्ति जासु तुव, प्रकट भयो कुल घात ॥  
 तबै क्षमा निज पियतन, चितई दृष्टि पसार ॥  
 कोपि वचन सुनि करि क्षमा, सहिये शब्द विचार ॥  
 कह्यो क्रोध अति रिस भरे, रे धीरज मतिहीन ॥  
 कहा प्रातहि आइ तुम, अशुभ दृष्टि मुहि दीन ॥  
 लियो ज्ञानको बोलिके, क्षमा आपने तीर ॥  
 कहत वचन और कछू, मेटि क्रोधकी पीर ॥  
 कहत क्रोध अति रिस भरयो, रक्त वर्ण कर नयन ॥  
 तन पर स्वेद कम्पित अधर, मुखते कटुतर वयन ॥  
 प्रकट भई हिंसा तबै, क्रोध नारि विकराल ॥  
 अब सबको धीरज गयो, प्रकट भयी ज्यों काल ॥  
 बोली हिंसा रिसभरी, लिये खड्ग वितरीति ॥  
 कोपि क्षमा मारण चली, लिये खड्ग अपकीर्ति ॥  
 शतमख निजैगुरु मारयो, शंभु सतीको तात ॥  
 कहुको मोरे जियतते, निकसि बाहिरे जात ॥  
 सुर नर मुनि व्याकुल किये, ताहि सकै कहि कौन ॥  
 लगी समाधि युगाधि भर, ताहि छुडावत मौन ॥  
 क्षमा कहे भृगु लात जब, हनी विष्णुके हीय ॥  
 क्षमा किये प्रभुता भयी, सुर नर मुनिके जीय ॥  
 क्षमा नाम यह भूमिको, सहत सकल अपराध ॥  
 है सबके अपराध शिर, जेहि वन्दे सुर साध ॥

१ इन्द्र । २ इन्द्रको ब्रह्मज्ञानके उपदेश देनेवाले दध्यङ्गुषि थं । इन्द्रने इनका शिर काटलियाथा उपनिषदोंमें इसकी कथा प्रसिद्ध है । आत्मपुराणमें विस्तारसे है ।

बहुरि क्रोध बोल्यो तहाँ, धरे भार बहु भूमि ॥  
 मोर भार सहिसके, जाय पताल झूमि ॥  
 को मोरी तेजै सहे, कहा बडो अस बीर ॥  
 ब्रह्मा विष्णु महेश हू, सो उर धरत न धीर ॥  
 कहे क्षमा पुनि भक्ति सो, हम सबविधि लघु आहि ॥  
 कब सम्पति यह क्रोधकी, क्यों पटतरि हैं ताहि ॥  
 क्रोध सुभट बोल्यो तबै, कहत वचन यह कर ॥  
 मेटो मार विलम्ब नहीं, दया धर्म बड शूर ॥  
 जैसे कोऊ यत्न करी, संग्रहि कीन्हो वित्त ॥  
 तस्कर पलमें लैगयो, शोक अग्नि जर चित्त ॥  
 क्षुधा पिपासा नोंद पुनि, सिन्धु तरहि ज्यों यार ॥  
 गोपद लै बोलो तिन्हें, ऐसेही वरियार ॥  
 जबै क्षमा सब सहि रहि, गहिरहि भगवत आस ॥  
 हृदय समझ बोलत भयी, हम तो हैं तुव दास ॥  
 यों कहत तुरत क्षमा कहे पौरुष बोलेऊ ॥  
 कुशल कुशल कहि फिर उत्तर खोलेऊ ॥

टीका—हे धर्मदास ! जिस समय क्रोधने महा कटु और हृदयमें  
 शूल उत्पन्न करनेवाले महानिन्द्य वचन कहकर क्षमाके समस्त परि-  
 वारको गाली दीयी उस समय भी क्षमा शान्तिसे कहने लगी हे क्रोध !  
 आपने जो कुछ कहा बहुत अच्छा कहा वाह ! वाह ! ऐसेही चाहिये ।  
 इस प्रकारसे बार बार उसकी स्तुति करती हुई क्षमाने कहा आपने  
 जो कुछ अपना पुरुषार्थ और बल वर्णन किया सब ठीक है । इसमें  
 क्या संदेह आप बहुत बडे हैं । इस प्रकारसे क्षमाके कहने पर क्रोधने  
 उसकी बातोंको कटाक्ष समझकर और भी अपनी शक्ति अधिक  
 प्रकाशित की । और—

कीन्हेसि चरण प्रहार सो अति विहसत भयो ॥

जत कछु मम अपराध स्वामी अब गयो ॥

टीका—क्रोधने क्षमापर अपने लातसे प्रहार किया । उधर क्रोधने लात मारा इधर उसके बदलेमें क्षमाने हँसकर हे भाई ! हे मालिक ! अब मेरा जो कुछ अपराध था सो सब छूट गया । किन्तु-

मम हिय अतिहि कठोर चरण मृदुलै अहे ॥

शासन उचित सो कीजिये अनुजै निर्वहे ॥

टीका—मेरा हृदय अत्यन्त कठोर और आपका चरण अत्यन्त कोमल है इससे आपको चोट लगी होगी सो क्षमा करना, हे भाई ! मैं आपसे छोटी हूँ आप मेरे जो उचित शासन समझिये सो कीजिये मेरा निर्वाह सब प्रकारसे आपसे होसकता है ॥

दोहा—यहि सुनि झख लागे बकन, क्रोध बहुत दुख पात ॥

दास कहत हियसो मनहुं, लगे चरणको घात ॥

धर्म तपस्या दया धन, पुनि संयम अरु नेम ॥

ज्ञान भक्ति वैराग्य बल, तजत शील रो प्रेम ॥

मेरे तेज प्रतापते, ये सब जाहि पराय ॥

धीरजहू धीरज तजै, मेरो दर्शन पाय ॥

क्षमा कहे तुमहो बडे, गुनहु बडे तुम माहिं ॥

जो कुछ कहो सो सत्य है, यामें संशय नाहिं ॥

कृपा करी मोपर बडी, मैं मान्यो बड भागि ॥

क्षमा दीन ह्वै क्रोध के, तुरते पायन लागि ॥

क्षमाकी ऐसी अधीनताको देखकर क्रोधका तेज हत होगया ।

यह सुनि क्रोध शीत लगत अतिकुंठित भयो ॥  
हारथो कर अतिदाप सबै जडता गयो ॥

टीका—क्षमाकी अमृत समान अधीनताकी वाणीको सुनकर क्रोधका सब तेज जाता रहा, अब वह शांत और कुंठित होकर आगे युद्ध करनेसे रुक गया और अपने हथियार डाल दिये ।

दोहा—कियो अनादर क्षमाको, शीतल भयो न रोष ॥  
तबै क्षमा पायन परी, सबै हमारो दोष ॥  
तुम विन दूजो को अहै, परम सीखकी बात ॥  
सबै चूक मोसे परी, क्षमा कीजिये तात ॥  
गये क्रोधके प्राण तब, शीतल भयो शरीर ॥  
जीति क्षमा प्रिय ढिग गयी, मिटी सुतनकी पीर ॥  
जैसे चण्डी मारेउ, महिषासुर विक्राल ॥  
तैसे क्षमा विनाशेऊ, क्रोधहि हियेको शाल ॥

क्रोधके मरतेही दूतोंने मोहराजाको जाकर अपने पराजयका समाचार सुनाया ।

काम क्रोध सुभट्टै युग पराजय पायऊ ॥  
महा मोह अति संकेऊ दास बुलायऊ ॥

टीका—काम और क्रोध दोनों महावीरकी जब पराजय हो गयी तब मोह राजा अति भयभीत होकर अपने सर्व सेनाको बुलाकर एकदमसेही विवेककी सेनासे युद्ध करनेको रणमें आया । तब—

तब विवेक निजदलकहँ आयसु दीन्हेऊ ॥  
निज निज जोरी जान निपातन कीन्हेऊ ॥

टीका—जब मोहराजाने एकदमसे अपनी समग्र सेना सहित विवेककी सेना पर चढायी की, तब इधरसे विवेक राजाने भी अपनी समग्र सेनाको शत्रुसे युद्ध करनेकी आज्ञा देदी । अब क्या था, घमसान युद्ध आरंभ हुआ । अपने २ जोड़के योद्धाओंको ढूँढ २ कर सब परस्पर युद्ध करने लगे । तहाँ--

बुद्धि कुबुद्धिहिं मास्थो धर्म अधर्मता ॥  
 कृष्णा हतेउ संतोष सो कर्म अकर्मता ॥  
 चंचल तेहि थिर मारेउ पुण्य जो कुकर्मा ॥  
 दुविधहिं एकता घातेउ लिपट सूक्ष्मश्रमा ॥

टीका—बुद्धिने कुबुद्धिको मारा, धर्मेने अधर्मको तारा; तृष्णाको संतोषने उजारा और कर्मने अकर्मका नाश मारा । स्थिरताने चंचलताको लुप्त किया तो पुण्यने पापको गुप्त किया । द्वैतभावको अद्वैतने तो सहजमें ही नाश कर दिया । इसी प्रकारसे मोह राजाकी समस्त सेनाका सत्यानाश होगया ॥  
 छन्द—श्रम ही नमान्योरिपुसँहान्योमोह दुन्दुभीबाजई ॥  
 प्रवृत्ति पुत्र पौत्र सबगत अम्बिका सुनि लाजई ॥

टीका—हे धर्मदास ! विवेकराजा तो इस प्रकारसे शत्रुको नाश करके निश्चित होकर बैठे, आनन्दरूपी दुन्दुभी बजने लगी किन्तु जब प्रवृत्तिने अपने वंशका नाश सुना तब अत्यंत लज्जित होकर पश्चात्ताप करने लगी फिर--

आदि आशा सखी मिलि प्रवृत्ति आगे आयऊ ॥  
 मन राजा पत्नी सुनत क्षय शोक विपति विरागेऊ ॥

टीका—हे धर्मदास ! जब प्रवृत्तिके सर्व पुत्र पौत्र कलत्रका नाश होगया तब वह अत्यन्त शोक और पश्चात्ताप करती हुई आदि

आशाका साथ लकर मनराजा के समीप पहुँची ( आदि आशा प्रवृत्तिकी सखी है क्योंकि, जब यह जीत अपने स्वरूपकी आदि अवस्थाका वर्णन शास्त्रोंमें सुनता है तब उस आदि सुखकी प्राप्ति के लिये प्रवृत्तिमें फँसता है । यद्यपि आदि आशा प्रथम उत्पन्न होती है तथापि प्रवृत्ति अधिक बलवती होनेके कारणसे उससे प्रधान होजाती है । )

इस प्रकार प्रवृत्ति जब मनके निकट गयी तब मनराजा अपनी प्यारी स्त्री प्रवृत्तिके परिवारके नाशको सुनकर अत्यन्त कष्ट और शोक तथा विपत्तिको प्राप्त हुआ । पश्चात् उसे विराग आया ॥

( जब जीव किसी पदार्थ को अत्यन्त स्नेहपूर्वक ग्रहण करता है तब अपने स्वरूपको भूलकर उसी पदार्थमें तदाकार होजाता है किन्तु जब उस पदार्थसे वियोग होजाता है, अथवा उसमें किसी प्रकारसे कुछ हानि होती है तब उसके चित्त को बहुत कष्ट, अनुताप और दुःख होता है, फिर थोड़ी देरमेंही चित्तमें स्थिरता आनेसे चित्तको शान्ति आजाती है और उससे विराग हो जाता है ) ॥ अब मन राजा प्रवृत्ति से पूछता है ॥

हे बाला अर्द्धंगी कितहि सिधायऊ ॥

सुहाय तुव सुत सतत किहि विधि मारेऊ ॥

टीका—हे मेरी स्त्री प्रवृत्ति ! तू इस समय कहाँ आयी है । तेरे परम सुन्दर पुत्रोंको किसने किस प्रकारसे मारा ॥

उधर तो प्रवृत्ति मनराजाके पास पहुँची है इधर अब निवृत्ति ने देखा कि, अब समय आया है मनराजा को अपने वश करना चाहिये इसलिये उसने अपने सखियोंको सिखाकर मनराजाके पास भेजा ॥

निवृत्ति निज सखियन तुरत सिखायऊ ॥

पति समीप तुम गौनो बात बुझायऊ ॥

टीका-मन राजाको विराग संयुक्त देखकर निवृत्तिने अपनी सखियोंको बुलाकर और उन्हें कुछ गुप्त शिक्षा देकर मन राजाके पास भेजा । तब-

विद्या विनय अधीन सखी तुरते गयी ॥

करि प्रणाम कर जोरि मानु बोलत भयी ॥

टीका-निवृत्तिकी आज्ञा पाकर विद्या विनय और आधीनता तीनों सखी मन राजाके पास जाकर प्रणाम करके विनयपूर्वक बोलने लगीं । क्या बोलने लगीं कि हे प्रभु-

कितहि उदास समुझि जिय देखिये ॥

एक वनितासंगभोग अब द्वितीय लेखिये ॥

टीका-निवृत्तिकी सखियोंने राजा मनसे कहा हे महाराज ! अब आप किस बातकी चिंता कर रहे हैं । अबतक एक स्त्रीके साथ समागम करके आनन्द विलास प्राप्त किया और उसका परिणाम भी देख लिया अब दूसरीकी ओर दृष्टि कीजिये और उसके आनन्द विलास और उसके परिणामको देखिये ॥

निवृत्तिकी सखियोंके वचनको सुनकर प्रवृत्तिकी सखी आशा ( जो प्रथमसेही वहाँ बैठी हुईथी ) को अच्छा न लगा ।

सुनतवचन रिसवश भयी आशा योंकही ॥

विद्या द्रोह दुचारिणी कितहु न चूकही ॥

सुहावति सौत समाजहि सबहि मरावसी ॥

कहि कहि पाठ कुपाठ विवेक पठावसी ॥

टीका-विद्याकी बातको सुनकर क्रोधित हुई आशा कहने

लगी—हे विद्रोहिणी ! दुराचारिणी विद्या ! तू कहीं भी चूकती नहीं है । प्रवृत्ति जो सौत निवृत्ति है उसके समाजमें सदा वास करके उसके पुत्र विवेकको पाठ कुपाठ अर्थात् सत्य झूठकी बात कह कहकर उसे बहकाती है और प्रवृत्तिके वंशका नाश भी तूनेही कराया है ।

जो वांछित सो कीनो अब कित भावसी ॥

जरे पर तैं माहुर भले लगावसी ॥

टीका—हे विद्या ! जो तेरे मनमें था सो तो तूने करलिया अब क्या करना चाहती है कि जलेपर जहर लगाने आयी है । आशाकी ऐसी दुष्ट वाणीको सुनकर विद्याने उसकी उपेक्षा की और मनराजासे कहने लगी ।

स्वामी चित धीरज धरि नीति विचारिये ॥

उभय नारि प्रतिपालक कितहिं विसारिये ॥

टीका—विद्याने कहा हे महाराज मन ! आप नीतिपूर्वक विचार करके देखिये कि आप अपनी दोनों स्त्रियोंके पालन पोषण करनेवाले हैं । सो अपने इस धर्मको कहाँ भूलगये हैं । आप अबतक प्रवृत्तिमें सम्पूर्ण लित हो रहे हैं और निवृत्तिको एकदम भुलादिया है उसकी ओर भी दृष्टि उठाकर देखिये । इस प्रकारसे मनराजासे कहकर विद्या आशाकी ओर फिरी और उसको डांटा—

भाग भाग दूती भामिनी नित्य इच्छा चहै ॥

प्रवृत्ति है भारी देह अजहुं चिंता गहै ॥

टीका—विद्या कहती है । हे दूती आशा ! यहांसे भाग जा यहांसे भाग जा । देखती है कि, मनराजाके साथ प्रवृत्ति शरीर-रूप होकर साक्षात् इतने बड़े स्वरूपसे विराज रही है तथापि उसको फिरसे और भी बड़ा बनानेके लिये चिंता कर रही है ।

यहाँ भाग, भाग दोबार कहने से आशय यह है कि, निवृत्तिपरायण पुरुषोंको लौकिक पारलौकिक दोनों प्रकारकी आशा त्यागनी चाहिये और यही वैरागका स्वरूप है । आशा को इस प्रकारसे दुतकार विद्या फिर मनराजासे कहने लगी ॥

छन्द-गहि निवृत्ति स्नेह कीजे सुनहु स्वामी नागरा ॥

विषय शोचहि कहा कीजेकरहु राज उजागरा ॥

टीका-विद्याने कहा है बुद्धिमान स्वामिन् अब आप निवृत्तिको ग्रहण करके उसके साथ प्रेमपूर्वक राज्य कीजिये ॥

मनराजा सुनि हर्षेऊ निवृत्ति संगम आयऊ ॥

पति पद परी आनन्द भारि सुफल जीवन पायऊ ॥

टीका-विद्याके शिक्षाप्रद वचनोंको सुनकर मनराजा मनमें बहुत प्रसन्न हुआ और विद्याके साथही निवृत्तिके समीप गया । हे धर्मदास ! उस समय निवृत्तिके आनन्दका क्या पार हो ? निवृत्ति अपने पतिको अपने ऊपर कृपा करनेके लिये निकट प्राप्त हुआ देखकर अपनी जीवनकी साफल्यताको प्राप्त जानकर पतिके चरणपर पडगयी ॥

अब दोनों आनन्दपूर्वक आनन्द विलासमें मग्न हुए ॥

इस प्रकारसे हे धर्मदास ! जब यह मन प्रवृत्तिसे अलग होकर निवृत्तिको प्राप्त होकर गुरुमुखद्वारा सच्चे पारख पदको प्राप्त होताहै तब मन स्थिर होकर सुखकी प्राप्ति होती है ॥

इति श्रीहंसमुक्तावली अन्तर्गत मोह और विवेकका युद्ध कबीरपंथी भारत-पथिककृतटीका सहित समाप्त ।

इति विवेकसागर समाप्त ।



सत्यसुकृत, आदि अदली, अजर, अचिन्त, पुरुष,  
मुनीन्द्र, करुणामय, कबीर, सुरतियोग, संतायन,  
धनी, धर्मदास, चूरामणिनाम, सुदर्शननाम,  
कुलपतिनाम, प्रबोध गुरुबालापीर, केवल  
नाम, अमोल नाम, सुरतिसनेही नाम, हक्क  
नाम, पाकनाम, प्रगट नाम, धीरज  
नाम, उग्र नाम, दया नामकी  
दया, वंश व्यालीसकी दया ।

अथ श्रीसर्वज्ञसागर प्रारम्भः ।

धर्मदासवचन—चौपाई ।

कहे धर्मदास सुनो गुसाई । सकल मता तुम कहा समझाई ॥  
वरनि भेद कह्यो बहुमानी । सर्व ज्ञान तुम कही बखानी ॥  
सब को सार कहो समझायी । भिन्न २ मोहिं देहु लखायी ॥  
सावन भादो वरसे मेहा । एते शब्द तुम कथे विदेहा ॥  
बहुत अगम है मता तुम्हारा । कहँ लगि गम्य करै संसारा ॥  
नर देही कछु गम्य ना जाने । जो कछु सुनै सोई अनुमाने ॥  
तहँको भेद कहँ मूरख पावे । विनु सतगुरुको आन लखावे ॥  
जो नहीं गर्भवास महँ आवा । अजावन सोई गुरु कहावा ॥

साखी-बहुत भेद कह्यो तुम, सुन्यो सुरति दे कान ॥

अब कछु ऐसो भाषिये, आदि अंत बंधान ॥

सतगुरुवचन-चौपाई ।

तब सतगुरु अस वचन उचारा । सुनु धर्मनि प्राण अधारा ॥

बहुत ज्ञान सुनायो तोही । तुम अंतर जाना अब मोही ॥

कोटि ग्रन्थ ज्ञान हम भाखा । सुनिके भेद तुम अन्तर राखा ॥

पुनि टकसार मैं कहाँ अमानी । सो धर्मनि तुव मन नहीं मानी ॥

बीजक ज्ञान मैं कह्यो अरथाई । सो तुमरे चित एक नहीं आई ॥

चौथे मूल ज्ञान लै आवा । सर्व लोकन कों भेद बतावा ॥

चार ज्ञान मैं कहा समझायी । तेहिमें तुम्हें परतीति न आयी ॥

विनु परतीति काज नहीं होई । श्रद्धा विनाजिव जाय विगोई ॥

साखी-पुरुष हमसों जो कही, सो तोहि दीन्ह दिखाय ॥

और धर्म नहीं गोइहौं, सुनु धर्मनि चित लाय ॥

धर्मदासवचन-चौपाई ।

धर्मदास विनती अनुसारी । साहिब विन्ती सुनो हमारी ॥

सकल भेद गुरु कहौ बुझायी । जाते संशय सब मिटि जायी ॥

आदि अंत मधि गति सोई । सबै कहौ राखौ मति गोई ॥

पहले आदि समरथ किमि होई । उत्पति प्रलय भाषो तुम सोई ॥

तुम संदेशी आदिते आये । सर्व भेद तुम हमें सुनाये ॥

चारि ज्ञान तुम भाषि सुनावा । ज्ञान चारिको अर्थ बतावा ॥

अब त्रय वाचिक मोहि सुनावहु । दया करो जनि मोहि छिपावहु ॥

साखी-तुम निज सतगुरु आदि हौ, हम हैं वंश तुम्हार ॥

समरथ अन्त बतावहु, मिटे भर्म कौवार ॥

सतगुरुवचन-चौपाई ।

तब साहिब अस वचन उचारा । सुनु धर्मनि प्राण अधारा ॥

आदि अन्त कोई नहीं वासा । आपहि आप कीन्ह प्रकासा ॥

साहब होते और नहीं कोई । शिष्य गुरु होते नहीं दोई ॥  
 नहीं तब ब्रह्मा वेद निशानी । नहीं तब शिवकी उत्पानी ॥  
 नहीं तब विष्णु न निरंजन राया । नहीं तब अच्छर सृष्टि बनाया ॥  
 नहीं तब अतीत पुरुष कर ताना । नहीं तब रचे लोक अरु धामा ॥  
 नहीं सृष्टि न सिरजनहारा । नहीं कुछ असार नहीं कुछ सारा ॥  
 नहीं नरसिंघ न कलकी नाहीं । गुरु औ शिष्य बताऊ काही ॥

साखी-पिण्ड ब्रह्माण्ड तब ना हता, नहीं लोक विस्तार ॥  
 पुरुष एक निश्चल हता, जिनकी सकल पसार ॥

धर्मदासवचन चौपाई ।

सुनु सद्गुरु विनती चित लायी । तुम गुरु रूप सदा सुखदायी ॥  
 ब्रह्म देवता वेद विचारा । सो हम बूझे हृदय मँझारा ॥  
 चारि वेद भे तहैं चारी । चारि धाम गुरु कहौ विचारी ॥  
 सर्व ज्ञान गति तुम भाखा । क्षर अक्षर थापि जो राखा ॥  
 उत्तर पुरुष सब कुछ कीना । सो तौ हम जीवन सब चीन्हा ॥  
 यही भेद विरञ्चि विचारा । सोई आठों योग पुकारा ॥  
 सोई सकल मुनिन ठहराई । सोई शुक्रदेव संसार सुनायी ॥

साखी-सोई पुरुष तुमही कहो, हम चीन्हा जियमांहि ॥  
 तुम काहेको आयऊ, सोइ बतावो थाहि ॥

सतगुरुवचन-चौपाई ।

तब सतगुरु बोले विहँसाई । धर्मदास बोले लडकाई ॥  
 जो कुछ वेद विरंचि विचारा । सबकी गतिमति कह्यौ निरधारा ॥  
 तेहिते और कहाँ है भाई । यही भेद सब जीवन पायी ॥  
 त्रिवाचिक तुम पूछो मोही । नितप्रति अगम कहौ मैं तोही ॥

कहा कहाँ मैं कहत डराऊँ । ताते उत्पति कहत लजाऊँ ॥  
 तब नहिं होते पिण्ड ब्रह्मण्डा । तब ना हती पृथ्वी नौ खंडा ॥  
 तब नहिं लोक द्वीप की बानी । तब नहिं जीव जन्तु उत्पानी ॥  
 तब नहिं पुरुष और प्रकीरती । तब नहिं अछर निरञ्जन जोती ॥  
 तब नहिं ब्रह्मा विष्णु महेशा । तब नहिं गौरी गणेश औ शेषा ॥  
 तब नहिं ज्ञान ध्यान औ ज्ञानी । तब नहिं वेद कितेव निशानी ॥  
 तब नहिं गुरु सतगुरुकी बानी । तब नहिं सात सिन्धु उत्पानी ॥  
 तब नहिं सुरति शब्द निर्मावा । तब नहिं एक दोय परभावा ॥

साखी-पांचतत्त्व तब ना हते, न हते आठों धाम ॥

नौद्वार तब ना हते, कहाँ लीन्ह विश्राम ॥

धर्मदासवचन-चौपाई ।

सतगुरु मैं बलिहारी तेरी । जीवन की काटी तुम बेरी ॥  
 दया सिन्धु दाया तुम कीन्हा । सर्व जीव आपन करि लीन्हा ॥  
 दया करो जनि मोहि छिपाओ । आदि अन्त उत्पन्न सुनाओ ॥  
 जो आपन करि जानो मोही । सकल भेद बतावहु तोही ॥

साखी-धर्मदास विनती करै, गहि कबीरको पाय ॥

साहिब तुम बीछुरे, शब्द बाहिरे जाय ॥

सतगुरुवचन-चौपाई ।

सुनु धर्मदास यह अकथ कहानी । सुर नर मुनि काहू नहिं मानी ॥  
 तन मन धनसो चित्त लगावे । गुरुका अन्त कोइ बिरले पावे ॥  
 युगन युगन मोहि आवत भयऊ । सत्य शब्द मैं कहते रहेऊ ॥  
 कहा कहाँ कोई नहिं मानै । जे समझै ते झगरा ठानै ॥

सत्ययुगका वर्णन ।

सतयुग चारि हंस समझाये । प्रथम राय मित्रसे नहिं आये ॥

चित्ररेखा रानी कर नाऊ । तिन सुनि शब्द श्रवणचितलाऊ ॥  
 तिन युगबंध चौका कीन्हा । युग बंधी परवाना लीन्हा ॥  
 राजा रानी पूछत मोही । सो हकीकत कहों मैं तोही ॥  
 अष्टचौकाको शब्द सुनावा । राजा रानी लोक पठावा ॥  
 दुसरे राय वटक्षेत्रके आवा । सतसुकृत तहँ नाम धरावा ॥  
 तिन राजा पूछी चित लायी । तब तेहि भेद कझो समझायी ॥  
 पान परवाना राजहिं दीन्हा । राजा वास लोकमें कीन्हा ॥  
 तिसरे राय हरचन्द कहँ आये । बन्ध काटिके लोक पठाये ॥  
 चौथे पुरी मथुरामें आयी । विवसी ग्वालिनके समझायी ॥  
 चारिहंस सतयुग समझाये । ते चारों गुरुवंश कहाये ॥  
 चारिहंस नौ लाख बचाये । शब्द भरोसे घरहिं पठाये ॥

### त्रेता युगका वर्णन ।

पुनि त्रेता युग कहों विचारी । सात हंस त्रेतायुग तारी ॥  
 प्रथम ऋषी श्रृंगी समझाये । दुसरे अयोध्या मधुकर आये ॥  
 तिनसे शब्द कझो टकसारा । चौथे बोधे लछन कुमारा ॥  
 पचवें चलि रावण लगि गयऊ । तहाँ भेंट मन्दोदरिसे भयऊ ॥  
 गर्वी रावण शब्द न माना । मन्दोदरी शब्द पहचाना ॥  
 छठें चलि वसिष्ठ लगि आये । ब्रह्म निरूपन उनहि सुनाये ॥  
 सतये जंगलमें कियो वासा । जहाँ मिले ऋषी दुर्वासा ॥  
 सात हंस सातौ गुरु कीन्हा । परमतत्त्व उनही भल चीन्हा ॥  
 सातौ गुरु त्रेता में भयऊ । देइ उपदेश सो हंस पठयऊ ॥

### द्रापरयुग वर्णन ।

त्रेता गत द्वापर युग आया । सत्रह जीव परवाना पाया ॥  
 प्रथमें रायचन्दविजयकहँ गयऊ । ताकी रानी इन्दुमति रहेऊ ॥

दुसरे राय युधिष्ठिर कहँ आये । द्रौपदी सहित परवाना पाये ॥  
 तिसरे पराशर पहुँ आये । निर्णय ज्ञान ताहि समझाये ॥  
 चौथे राय धुंधुल लहि भेदा । बहुत ज्ञानको कीन्ह निखेदा ॥  
 पचयें पारसदास समझावा । स्त्री सहित परवाना पावा ॥  
 छठये गरुडबोध हम कीन्हा । विहँग शब्द गरुडको दीन्हा ॥  
 सातें हरिदास सुपच समझावा । नीमषार महँ उसको पावा ॥  
 अठयें शुकदेव पहुँ ज्ञान पसारा । सकल सब भेद निरवारा ॥  
 नवमें राजा विदुर समझाया । भक्तिरूप उन दर्शन पाया ॥  
 दशमें राजा भोज बुझाया । सत्य शब्द पुनि उसे चिन्हाया ॥  
 ग्यारहें राजा मुचकुंदहि तारे । बारहें राजा चन्द्रहास उबारे ॥  
 तेरहे चलि वृन्दावन आये । चारि ग्वाल गोपी समझाये ॥  
 गुरु रूप पुनि पन्थ चलाये । भौसे हंसा आनि छुडाये ॥  
 बावन लाख जो जीव उबारा । कलियुग चौथे यहाँ पग धारा ॥

### कलियुग वर्णन ।

प्रथमें गोरखदत्त समझाये । तारक भेद हम तुमहि बताये ॥  
 दुसरे शाह बलखको बोधा । पढै आरबी बहुविधि सोधा ॥  
 तिसरे रामानन्द पहुँ आये । गुप्त भेद हम उन्हें सुनाये ॥  
 चौथे पीरको परचे दीन्हा । पचये शरण सिकन्दर लीन्हा ॥  
 छठै बीरसिंह राजा भयऊ । ताको हम शब्द सुनयऊ ॥  
 सतयें कनकसिंघ समझाये । सोलह रानी लोक सिधाये ॥  
 अठएँ राव भूपाले आये । ग्यारह रानी लोक पठाये ॥  
 नौमें रतना बनिन समझाई । जाति अग्रवालिन करत मिठाई ॥  
 दशएँ अलिदास धोबी गयऊ । सात जीव परवाना पयऊ ॥  
 ग्यारहें राजा भोज समझाया । तिन बहु भक्ति करी चितलायी ॥  
 बारहें मुहम्मदसो कह्यो कुराना । हद्द हुकुम जीव कर माना ॥

तेरहें नानकसे कह्यो उपदेशा । गुप्त भेदका कहा सन्देशा ।  
चौदहें साहु दमोदर समझावा । करामात दै जीव मुक्तावा ॥  
चौदह हंस कलियुगमें कीन्हा । गुरु स्वरूप परवाना दीन्हा ॥  
पांचलाख हम पहिले तारे । पीछे धर्मनि तुम पगुधारे ॥  
वंशन थाप्यों कियो कडिहारा । लाख ब्यालिस जीव उबारा ॥

साखी—तुम जानो हमही मिलै, फिरि फिरि पूछो मोहि ॥  
नाम भरोसे पहुँचि हैं, ज्ञान करे का होहि ॥

धर्मदास वचन—चौपाई ।

धर्मदास जिव संशय मानी । जब बोले सतगुरु अस वानी ॥  
दोइ कर जोरि चरण चित धरई । फिर फिर गुरुसों विनती करई ॥  
बडी भूल हमरे जिय आयी । समरस करिके ज्ञान फैलायी ॥  
मेटयो धोखा साहिब मोरा । दयासिन्धु जिव बन्दी छोरा ॥  
धर्मदास जिय भये मलीना । जैसे कमल जिव सम्पुट दीना ॥  
अजान जीव हम तुम्हें न चीन्हा । भाग बंड मोहिं दर्शन दीन्हा ॥  
जो कुछ कहब सोई हम मानब । वचन तुम्हार हृदयमें आनब ॥

साखी—धर्मदास जिव डरपे, गुरुकी मानी त्रास ॥  
अब नहिं पूछौं ज्ञान में, मोहिं दरशकी आस ॥

सतगुरु वचन—चौपाई ।

सुनु धर्मदास कहौं मैं तोसो । जो कछु भद पूछिहौ मोसो ॥  
प्रथमहिं समरथ आप अकेला । उनेक संग दोसर नहिं चेला ॥  
तब निश्चलशब्द उच्चारण भयऊ । तेहि शब्द एक कमल निर्मयऊ ॥  
तेहि कमलमें आसन दियऊ । तहाँ शब्द अधार जो लियऊ ॥  
तेहि कायाको रूप अपारा । असंख पाखरीको विस्तारा ॥

तहाँ बैठि सब रचना कीन्हा । सोई शब्द अधार जो लीन्हा ॥  
 मुख हिरदय ते कीन्ह प्रकाशा । तहाँ रूप अति भयी उजासा ॥  
 काया ते काया निरमाये । मुख कमल हो बाहर आये ॥  
 रूप सुरतिका रूप अपारा । भृंगि शब्द पारस अनुसारा ॥  
 भृंगीशब्द पुनि पारस दीन्हा । निःकलंक पुरुष प्रकट करलीन्हा ॥  
 रूप सुरति ते निकलंकी भयऊ । तिनको आज्ञा उत्पति दियऊ ॥  
 निकलंक विनती तब कीन्हा । कौन सन्धि साहिब मोहि दीन्हा ॥  
 कहौ भेद जेहि उत्पन होई । सोई शब्द गुरु भाषो सोई ॥  
 तब समरथ अस बचन उचारा । निष्कलंक सुन मता हमारा ॥  
 शब्द हमार दृढ हिरदय धरहू । निज सुमिरण तुम हमरा करहू ॥  
 जो चित सुरति तुम्हारे होई । तौन वस्तु सिखै सब कोई ॥

साखी-जो कुछ रचना चाहो करन, सुरति करत सो होइ ॥

रचहु लोक तुम बेगि पुनि, दीन्ह बचन मैं सोइ ॥

चौपाई ।

सुरति करत सबही बनि आई । इच्छा करत सन्धि होय भाई ॥  
 निश्चल लोक हमारो बासा । अविगति कमल कीन्ह प्रकाशा ॥

साखी-जीव सृष्टि रचना करो, सकल जीव उत्पान ॥

शब्द भरोसे तुम रहो, लेउ बचन सिर मान ॥

चौपाई ।

तुम धर्मदास सुनो चित लायी । तब निष्कलंक सृष्टि निरमायी ॥  
 निःकलंक सुरति स्वास ठहरायी । सहज सुरतिको टेक बनायी ॥  
 दहिने अंग सो शब्द निर्मायी । सहज शब्द सुरतिअंकुर उपायी ॥  
 सात करी विस्तार बनायी । यहि विधि रचना निरमायी ॥

सात करी अंकुर ते भयऊ । भिन्न भिन्न प्रसंग सो लयऊ ॥  
 सीप सरूपी करी जो कीन्हा । स्वास सरूपी इच्छा दीन्हा ॥  
 सात इच्छा सात करिनमें भयऊ । स्वाति सरूप बून्द तेहि दयऊ ॥  
 सातो करि भयी प्रकासा । नहिं तब धरती नहीं अकाशा ॥  
 अर्द्ध अंकुर रहा ठहरायी । तब मुख शब्द स्थिर कहँ आयी ॥  
 सोरह अंस जो जन विस्तारा । इतनी दृष्टि अंकुरज पसारा ॥  
 तेहिमें सात करी उपजायी । ताकर मर्म काहु नहिं पायी ॥  
 तेहि करिन ते अण्डा भयऊ । दोयकरी बिन अण्डा रहेऊ ॥  
 नहिं तब धरती नहीं अकाशा । अधरहिं अधर अण्ड प्रकाशा ॥  
 मध्य में अण्ड करे चौ चण्डा । एक अण्ड उपज्यो प्रचण्डा ॥  
 भिन्न भिन्न गति न्यारी कीन्हा । शिव शक्ति अण्डमहँ धरिदीन्हा ॥  
 नौसे निमिष अन्तर होय छूटा । तबहीं अण्ड उठ्यो पुनि फूटा ॥  
 प्रथमहि तेज अण्ड विगस्यो भाई । तामें पांच तत्त्व निर्माई ॥  
 बाहर पालँग तेज अण्ड विस्तारा । तामें पांच तत्त्व भौ सारा ॥  
 तत्त्व स्नेह अण्ड सो कीन्हा । अस्थिर शब्द कालभल दीन्हा ॥  
 तबही श्रवण साजी वानी । तेहिते मूल सुरति उत्पानी ॥  
 अबोलपरस सुरति कहिदीन्हा । सात संधि प्रकट कर लीन्हा ॥  
 सात सन्धि तब गुप्तहिं पेखा । पीछे सोहं शब्द विवेखा ॥  
 सोहं शब्द सत्य अनुसार । सोहं सुरति अजावन पसारा ॥  
 जावन ते पुरुष अर्चित निर्मायी । तेहि पुरुष अपने निकट बुलायी ॥  
 तेहिसों पुरुष ऐसी कही । सकल सृष्टि रचो तुम सही ॥  
 पुरुषको विनय कीन्ह करजोरी । हो सतगुरु विनती यक मोरी ॥  
 केहि विधि रचौं सो देहु बतायी । तौन भेद गुरु देउ पढायी ॥  
 निकलंकी पुरुष वाच उच्चार । शब्द प्रतापकर अगम विचारा ॥  
 शब्द प्रताप लेओ शिर नायी । सुमिरण करौ हमहिं लौलाई ॥

पांच अण्ड हम पहिले कीन्हा । तेहिमें सर्व तत्त्व गुण दीन्हा ॥  
जो कछु इच्छा करौ दिलमाहीं । सो सब कछु पैहौ तहांहीं ॥  
शब्द प्रताप अंचित जब लीन्हा । सकल सृष्टि सो उत्पन कीन्हा ॥

साखी-पुरुष अण्ड लैगये, देखा सकल पसार ॥

सद्गुरु रहे निहार तब, समरथ वचन आधार ॥

धर्मदासवचन-चौपाई ।

धर्मदास चरण गहे धाये । हे सतगुरु तुम अगम बताये ॥  
पुरुष अंचितकै सृष्टि फरमायी । तात सन्धि कहँ रखे छिपायी ॥  
कौन लोक कहँ लीन्हे वासा । सोई भेद गहौ परकासा ॥

सतगुरु वचन ।

जब अंचितको सृष्टि फरमायी । तेहि पाछे यक सुरति उठायी ॥  
सोरह असंख अंकुर पसारा । तेहि में पांच अण्ड विस्तारा ॥  
मिहर सुरति अजर लोक बनायी । तेहिमहँ सातौ सन्धि छिपायी ॥  
सातौ सन्धि उहां लै राखा । समरथ भेद गोइ कछु भाखा ॥  
सातौ सन्धि सो गुप्त छिपावा । ताको अन्त काहु नहिं पावा ॥  
मिहर लोक सन्धिन कहँ दीन्हा । आपन वास निरन्तर लीन्हा ॥  
निरंतर गुप्त ठिका निर्मायी । तामें सतगुरु रहे छिपायी ॥

साखी-गुप्त भेद किया इतनौ, काहु न पायो पार ॥

पुरुष अंचित की सृष्टिको, धर्मानि सुनो विचार ॥

चौपाई ।

पुरुष जब घटमें कीन्ह विचारा । प्रेम सुरति तबहीं उचारा ॥  
प्रेम अनन्द उपज्यो रे भाई । तेहिते प्रेम सुरति उपजाई ॥  
प्रेम सुरति भै रूप अपारा । प्रेमानन्द घट शब्द उचारा ॥  
नेत्र हेर बुन्द सो ढारी । सोइ सुरति दिल मांहि निहारी ॥

सुरति बुन्द तब तासों लीन्हा । सोई बुन्द अधर मँहँ दीन्हा ॥  
 ताहि बुन्द के अक्षर भयऊ । स्वर स्वासा हो बाहर गयऊ ॥  
 पुरुष अचिन्त आज्ञा तब दीन्हा । तेज अण्ड जो बैठक लीन्हा ॥  
 बारह पालंग अण्ड है सोई । तेहि मों सृष्टि तुम्हारी होई ॥  
 अच्छर आनन्द ताहि समाया । तामें परकृति सुरति उपजाया ॥  
 प्रकृति तें चारि अंश निर्मायी । देखि अंश आनन्द समायी ॥  
 तेहि अनन्द सो निद्रा आयी । सत्तर निमिष जब गयो सिरायी ॥  
 चारों जने समाधि लगायी । ताको मरम कहौं समझायी ॥  
 तब सतगुरु एक अविगति कीन्हा । जल तत्त्व ते अण्ड तब दीन्हा ॥  
 जब अण्डा जलमें उतराना । तब अन्तर निद्रा विलगाना ॥  
 अच्छर मन में कीन्ह विचारा । विकल भये तबही पगु धारा ॥  
 चले चले अण्डा लगि आवा । देखत अण्ड क्रोध उपजावा ॥  
 सोई क्रोध अण्ड में आवा । तेज शक्ति ताकर प्रभावा ॥  
 तेहि कारण सो फूट्यो भाई । तेहित निरंजन उपजाई ॥  
 कालरूप सो प्रकट प्रचण्डा । महा भयानक रूप अखण्डा ॥  
 अक्षर मन में शंका आई । तब चारों सुतन कहँ लियो बुलाई ॥  
 उनको बहुत भांति समुझाई । पृथ्वी बीज धरौ तुम जाई ॥  
 जग उत्पति तापै होय भायी । कर्म शेष पृथ्वी थाहो जाई ॥  
 जाते पृथ्वी डगै नहिं भाई । सोइ उपाय करौ तुम जाई ॥  
 धर्मराय तुम लेखा लेहू । सकल सृष्टि को लेखा देहू ॥  
 चारों अंश को सिखापन दीन्हा । आप वास मुक्तिदीपमें लीन्हा ॥

साखी—यह रचना अचिन्तकी, अच्छर को विस्तार ॥

निरंजन बैठे शुभ शिखर, मान सरोवर द्वार ॥

चौपाई ।

पुरुष अचित अस चित्त विचारा । सन्धि सुरति घट में उच्चार ॥

तेहिते चौदह मुनि उपजाये । जल अंडते अंश बनाये ॥  
 चौदह मुनि चौदह दीप बैठारा । पांजी पताल उनको विस्तारा ॥  
 संधि छाप सौंप सब दीन्हा । अच्छर लोकमें चौका कीन्हा ॥  
 यहि पुरुष चौदह अंश बनावा । यहि अक्षरमें मोह समावा ॥  
 तब अक्षरको संशय आई । तेहि ते स्वासा छाँडे भाई ॥  
 स्वासा संगम उठी तब बानी । माया सुरति तब भयी उत्पानी ॥  
 माया सुरति अच्छर उपजायी । अष्टंगी कैसो शक्ती आयी ॥  
 अच्छर अष्टंगी सो कहई । जाब जहाँ निरंजन रहई ॥  
 अष्टंगी तब कहे समझाई । हम कैसे निरंजन पहुँ जाई ॥  
 तब अच्छर अस कहे भेऊ । निरंजने जाइ सिखापन देहू ॥  
 कन्या चलि निरंजन लागि आयी । आदि निरंजन मिले तब धायी ॥  
 देखि कला तब गये भुलाई । हे कन्या तोहिं को निर्माई ॥  
 काम ज्योति प्रकटी प्रचण्डा । तब चित विकल भयो नरमण्डा ॥  
 सकल रूप गयउ भुलाई । कामकि लहरि दोउको आई ॥  
 तब संयोग भयो त्रय बारा । जेठे ब्रह्मा लघु विष्णु कुमारा ॥  
 तीजे शम्भू सबसे छोटा । ये निज भये ताहिके ढोटा ॥

साखी-जैसे रूप निरंजन, तैसे तीनो बार ॥

प्रलय काल पैदा भये, प्रलय करत संसार ॥

धर्मदासवचन-चौपाई ।

धर्मदास जिव भये अनन्दा । मैं पाया पूरण गुरु चन्दा ॥  
 धन्य भाग मोहि मिलै गुसाई । आपन करि मोहि लियो मुक्ताई ॥  
 और एक पूछनकी आशा । चौरासी लक्ष कैसे प्रकाशा ॥  
 तीन प्रकार सृष्टि किन पाऊ । चौथेका मोहि भेद बताऊ ॥

साखी-धर्मदास सुख पायो, घट मो भयो अनन्द ॥

संशय मिटै प्रफुलित भये, ज्यों पूनोको चन्द ॥

सतगुरुवचन—चौपाई ।

मुनु धर्मनि में कहूँ समझायी । लक्ष चौरासी योनि बनायी ॥  
माया चरित्र अब तोहिं सुनाओं । एक एक कै सब भेद बताओं ॥  
चारि कला सरूप धरि चारी । एक एक गति कहौं विचारी ॥  
एक सरूप सुरति लगि रही । तीन सरूप भिन्न घर सही ॥  
एक कला गायत्री भयऊ । जब पिता खोजको ब्रह्मे गयऊ ॥  
सो गायत्री ब्रह्माको दीन्हा । दूसरी कला लक्ष्मी कीन्हा ॥  
मथ्यो समुद्र रतन कढि आया । लक्ष्मी तबही विष्णुने पाया ॥  
तिसरी कला पार्वती कीन्हा । सोइ कला शम्भु कहँ दीन्हा ॥  
यह चरित्र मायाको भाई । जाकी गति मति लखी न जाई ॥  
तीन शक्तिको खेल अपारा । इनही रच्यो सकल संसारा ॥

साखी—माया परबल सबनमें, जो चाहे सो होय ॥

लख चौरासी इन रची, मरम न जाने कोय ॥

माया सृष्टि माया रची, जीव अनेक बनाइ ॥

उनते सब कछु होतहै, कहै कबीर समझाइ ॥

इति श्रीसर्वज्ञसागरे सृष्टिखण्डवर्णनोनाम प्रथमस्तरंगः ।

अथ द्वितीयस्तरंगः ।

ज्ञानखण्ड वर्णन ।

धर्मदास वचन—चौपाई ।

धरमदास पूछे चितलायी । उत्पति भेद सकल हम पायी ॥  
अब जिव कारज कहौ विचारा । जेहि करनीसो हंस उबारा ॥  
सो विधि ज्ञान कहो समझायी । जाहि ज्ञान से लोकहिं पायी ॥  
जीव उबारन ज्ञान सुनाओ । हे साहेब ! मोहिं नाहिं दुराओ ॥

साखी-सत्यसार बतावहु, जाते कारज होय ॥  
चौदह कोटि ज्ञान जो, सो हम देखि विलोय ॥

सतगुरु वचन-चौपाई ।

सुनु सुकृत मोर प्राण अधारा । तुमसे कहौं अब सकल पसारा ॥  
प्रथमहिं चारि वेद है सारा । चारि धाम पर मुक्ति पसारा ॥  
ऋग्वेद भेद मूलको पाया । चारि सुखको मर्म लखाया ॥  
सेवक शब्द सुमिरन चित लावे । सब सुख पृथ्वी पर भुक्तावे ॥  
कोइ सिद्ध कोइ पण्डित होई । कोइ रूप पावै पुनि सोई ॥  
जौं लगि दान पुण्यकी आशा । तब लगि है वैकुण्ठ निवासा ॥  
कोइ विद्या कोइ वेदको पावै । फिरिके देह संसार धरावै ॥  
अब सुनु साम वेद विचारा । विष्णु ध्यान वैकुण्ठ सिधारा ॥

साखी-बीते पुण्य भोग सो कीन्हे, आइ धरे जग देह ॥  
जब लग दान पुण्य का आशा, तबलग सुरपुर नेह ॥  
चौपाई ।

तिसरी मुक्तिको सुनो विचारा । सब मुनि योगी शून्य सिधारा ॥  
सायुज्य मुक्ति चौथी है भाई । अक्षर ध्यान मानिकपुर जाई ॥  
पचई जीवन मुक्ति है भाई । जहाँ देह धरे विन रहै समाई ॥  
कहि निज उत्तम पुरुष बतावा । परम धाम सब संतन गावा ॥  
पुरुष भक्ति जाके घट आई । एक ब्रह्म राखे ठहराई ॥  
परम धाम सोइ पहुँचे जायी । जिन परमात्मा चीन्ह्यो भाई ॥

साखी-चारि वेदको भेद है, चारि मुक्ति विचार ॥  
पांचई मुक्ति बेरंग है, केवल भक्ति आधार ॥

धर्मदासवचन-चौपाई ।

धर्मदास पूछे कर जोरी । एक भेद प्रभु कहौं बहोरी ॥

काहे पर वह कहिये भामा । जहां जीव पावे विश्रामा ॥  
करनी लोक मुक्तको भेदा । तुमसे कहौ मैं सुन्यो निखेदा ॥  
सो सब भेद कहौ मोहि साई । संशय सब विधि देहु मिटाई ॥

साखी-काहे पर सुमेरु है, काहेपर कैलास ॥

काहे ऊपर शून्य है, कहँ अक्षर को वास ॥

सतगुरुवचन-चौपाई ।

सुनु धर्मदास तोहि कहौ विचारा । यह भेद अगमगति भारा ॥  
सोरह नाल पुरुष निरमायी । लोकनको थम्भन नाल रहायी ॥  
कदली नाल लोकेते आई । सात शाख भई ताकी भाई ॥  
सुवर्ण रंग नाल है सोई । एकहि वर्ग नाल सब होई ॥  
प्रथमहि गुप्त नाल है भाई । तहां परबत पुनि नाम धराई ॥  
तापर परम धाम बनाया । तेहि मों पुरुष तत्त्व रहाया ॥  
दुसरी मंजुम नाल जो आवा । मानिक पर्वत नाम धरावा ॥  
तेहि पर मानिक द्वीप बसाया । अक्षर पुरुष दीप सो पाया ॥  
तिसरी सुरंग नाल है भाई । तापर झंझरी दीप रहाई ॥  
तहँवा रहै निरंजन राई । तीन देव तिनही निर्माई ॥  
चौथी नाल कांति रह सोई । ता ऊपर वैकुण्ठ जो होई ॥  
पंच शिखर सुमेरु सँवारी । एकपै इन्द्र एक कुबेर भंडारी ॥  
यक पै ध्रुव एक पै यम विस्तारी । मध्यमें त्रिणु सकल व्रतधारी ॥  
पांच ये नाल जो रचि राखा । ताकर नाम कैलास असभाखा ॥  
तहवाँ शंकरको है बासा । योग समाधिकी लावै आसा ॥  
छठयें नाल उमंग ठहरायी । अचावलही नाम सो पायी ॥  
सतयें त्रिकुटी ब्रह्म अस्थाना । तरंग नाल पारस है ठाना ॥  
कलकी नालकी सातों साखा । सातौ दरस यहां लों राखा ॥

यही बनाव धरती में होई । अघर वस्तु को जानै सोई ॥  
 अघरही चौका चारि प्रकाशा । चन्द्र सूरको तहां निवासा ॥  
 प्रथम अघर अंकुरहि निशानी । पांच अण्ड कीन्हे उत्पानी ॥  
 दूसर अघर निकलंकी जाना । तिसरे रूप सुरति परवाना ॥  
 चौथे अविगति नाम धराया । पांचे सरवज्ञी पुरुष कहाया ॥  
 चारी अंश अघर विस्तारा । धर अघर दोनोंसे न्यारा ॥

साखी-पांच तत्त्व तब ना हते, हते न हाट रु बाट ॥

लोक द्वीप तब ना हते, ना हते औघट घाट ॥

चौपाई ।

सुनो धर्मदास कहौ मैं तोही । जो कछु भेद पुछिहौ मोही ॥  
 सब अंशानके लोक बतावा । अंश वंश सब तोहि लखावा ॥  
 करनी करै सो लोकहि जायी । विनु करनी फिरिफिरि पछतायी ॥

साखी-सर्वज्ञसागर खोजहि, सब ग्रन्थन को सार ॥

कहैं कबीर निज मूलको, सत्य शब्द आधार ॥

इति श्रीसर्वज्ञसागरे ज्ञानखण्डवर्णनो नाम द्वितीयस्तरंगः ।

समाप्तोयं ग्रन्थः ।

उपसंहार-चौपाई ।

जेहि मानुष बुद्धि सब विधि आवै । अपनो कारज सोइ बनावै ॥  
 कपट कुटिलता काल नशायी । सत्यविचार रहै लौलायी ॥  
 जवनी भांति जिव कारज होई । लाज मिटाय करै दृढ सोई ॥  
 लोकलाज कुलकानके मारे । भँवरि भँवरि भव रहैं विचारे ॥  
 जेहि यम फन्द छूटे सो करना । नाहकमें काहे पचि २ मरना ॥

भली भांति सो लेहु बिचारी । सकल अचारज मतहिं सुधारी ॥  
 खरा खोट जो परखा नाहीं । अन्धा धोखे मूल नशाहीं ॥  
 प्रथम विचारहु औषध रोगा । केहिविधि शब्द हरै सब सोगा ॥  
 देखो शब्द प्रकाश विचारी । जाते सकल होय उजियारी ॥  
 गुरु एक सो कौन कहावे । जासो आवागमन नशावे ॥  
 सेवा अनेक करिय केहि केरा । विन जाने सब धुन्ध अंधेरा ॥  
 गुरु मत मनमत करे विचारा । सो जिव निज करे निरुआरा ॥

साखी-विन देखे नहिं देशकी, बातें कहै सो कूर ॥

आपै स्वारी खातहै, बेचत फिरे कपूर ॥

चौपाई ।

औषध पांच राह सब करई । औषध विना न कोई सहई ॥  
 शब्द स्पर्श रूप रस गन्धा । द्वारा पंच औषधिकी सन्धा ॥  
 सबहीं द्वार बूझ रहायी । विन बूझे नहिं कोई ठहरायी ॥  
 कोई झीना कोई मोटा द्वारा । तैसहि तासु भिन्न व्यवहारा ॥  
 झीना शब्द है पवन स्वरूपा । तासो मोटा अनलको रूपा ॥  
 अनलहू ते जल मोटा होई । जलते मोटी पृथ्वी है सोई ॥  
 पुनि प्रकाश एकते एका । थिर होइ देखे करे विवेका ॥  
 पृथ्वी मोटी आंख प्रकाशी । तासे मध्यम दृष्टि प्रवेशी ॥  
 पृथ्वीसे जल झीना होई । भीतर जोहै दीसे सोई ॥  
 जलसो झीना तेज प्रकाशा । जामें द्रशे धरति अकाशा ॥  
 रूपसो अधिक शब्द उजियारा । दृष्टिमें आवे सब संसारा ॥  
 भूत भविष्य जो हो वर्तमाना । शब्द भीतरै सबै समाना ॥  
 बूझ शब्द में पैठे जायी । शब्दके भीतर अनल रहायी ॥  
 अनल मध्य होयके जल देखा । जल के भीतर पृथ्वी पेखा ॥

साखी-रैन समानी भानुमें, भानु अकाशे मांहि ॥  
अकाश समाना शब्दमें, शब्द रहा कछु नाहिं ॥

चौपाई ।

पांचो औषध करै विचारा । मोटा झीना जो व्यवहारा ॥  
औषध अन्न जल पेट समाही । जाते क्षुधा औ प्यास नशाही ॥  
बहुत प्रकार लादके रोगू । सो सब जाय भोजन संयोगू ॥  
गन्ध कपाले पहुँचे जायी । गुण औगुण सब अंग समायी ॥  
लेपै गुण सब ले पहुँचावै । गुण औगुण सब माहिं समावै ॥  
आंखिकी राह रूप गहि लेई । शीत उष्ण सब अंगमें दई ॥  
शब्द औषधी कानके द्वारा । बूझ समाय करे निरुआरा ॥  
हर्ष विषाद यंत्र औ मन्त्रा । व्यापै सबै कोइ कोइ स्वतन्त्रा ॥  
मर्म सबै द्वाराको बूझे । विना शब्द निर्णय नहिं सूझे ॥  
स्पर्श रूप इत्यादिक चारी । सो सब मोट स्थूल अधिकारी ॥  
पुनि अस्थूल सो थिर न रहायी । तैसहिं औषध ताहि समायी ॥  
अंग अंगको देश है जैसा । अल्पे गहिये औषध जैसा ॥  
शब्द अति झीना बूझविचारा । जाते होय सकल निरुवारा ॥  
शब्द विना कोइ पार न पावै । विन गुरुकौन जो दाव लखावै ॥  
सर्व देश सर्वज्ञ है सोई । तेहि विनु कारज सधे न कोई ॥

साखी-शब्द विना श्रुति आंधरी, कहो कहांको जाय ॥

द्वार न पावे शब्दका, फिरि फिरि भटका खाय ॥

गुरू गुरूमें भेद है, गुरूगुरूमें भाव ॥

गुरू सदा सो वन्दिये, शब्द बतावे दाव ॥

फेर परा नहिं अंगमें, नहिं इन्द्रिनकी माहिं ॥

फेरा परा कछु बूझमें, सो निरवारचो नाहिं ॥

चौपाई ।

यहि संसार बहु वैद्य विराजे । नाना भांति औषधी साजे ॥  
साच एक झूठा बहुतेरा । विना सांच नहिं होय निवेरा ॥  
एक असल पर नकल अनेका । अनेक नकल नहिं पावे एका ॥  
बहुविधि ठग सब करे ठगाई । यमके फन्दा रहे अरुझाई ॥  
बूझि समझिके औषध कीजै । मिथ्यामें जिव काहेको दीजै ॥

मसला ।

गुरु कीजिये जानिके, पानी पीजै छानिके ॥

चौपाई ।

वेद पुराण किताब कुराना । दोहा साखी शब्द परमाना ॥  
अनन्त भाँतिका शब्द पसारा । विनु जाने नहिं होय सुधारा ॥  
सो सब औषध बहु विधि जाचे । यम फन्दासे तबही बांचे ॥  
पक्ष वाणी को मन मत कहिये । जाते द्वन्द सब घर लहिये ॥  
निर्णय वाणी गुरु मत होई । पक्षा पक्ष जाते सब खोई ॥  
जब निर्णयकी वाणी आवै । झूठा खोटा आपु लजावै ॥  
निर्णय सो सबके हितकारी । जेहि परसे जिव होय सुखारी ॥  
सार शब्द निर्णयको नामा । जाते होय जीवको कामा ॥  
गुरु एक जो निर्णय करई । झगरा कबहुँ परे न परई ॥  
जो कोइ निर्णय आश्रित भयऊ । सेवा करि निज कारज कियऊ ॥  
सो सब सेवा शिष्य कहावै । मन मत सो जो और बतावै ॥  
जग बुद्धि कहे मम गुरु एका । जेहि तेहि सेवा करे अनेका ॥  
पुनि जाको इन गुरु ठहराई । ताको दूसर गुरु सहाई ॥  
तेहिकी सेवा करे लौ लाई । सो सेवा पद कैसे कहाई ॥

टहल करे टहलू कहलावै । तासो पद सेवा बनिआवै ॥  
 सोइ सेवक जो सेवा करई । विना विचार बूझ न परई ॥  
 अपने अपने गुरुमत माने । और सबे मन मत अनुमाने ॥  
 विनु निर्णय सो द्वन्द्व न जाई । पचि पचि मरहिं करहिं लडाई ॥  
 जहँ झगडा तहँ गुरुमत नाहीं । जहँ गुरुमत तहँ द्वन्द्व नसाहीं ॥

साखी--पक्षा पक्षके कारणे, सब जग रहा भुलान ॥

निपक्ष होइके हरि भजे, सोई संत सुजान ॥

शब्द शब्द बहु अंतरा, सार शब्द मथि लीजे ॥

कहँ कबीर जहँ सार शब्द नहीं, धृग जीवन सो जीजे ॥

चौपाई ।

खरा खोट परखहु बहु भांती । तबहीं होय जीव कुशलाती ॥  
 जेहि गुरु ज्ञान न छूटन केरा । बहुत अनुमान सो भ्रम बौडैरा ॥  
 भवसागर दुस्तर कठिनाई । नौका नाम तहँ सत्य दिटाई ॥  
 बूडे भवकी धार न मूझे । मुए मुक्ति ऐसी दृढ बूझे ॥  
 जहँसे उयजे तहां समाना । कसर विकार मूल नहिं जाना ॥  
 भरमें आप जीव भरमावे । नाटक चाटक सुयश बढावे ॥  
 करामात करतूत बखाने । नास्तिक ज्ञान सोइ सत्यकै माने ॥  
 ऋद्धि सिद्धि सब जात नसाई । नास्ति ज्ञान नाहीं कुशलाई ॥  
 त्यर्ब ऐश्वर्य नास्तिन माहीं । जाके पीछे जिव बौराहीं ॥  
 आपु गये यजमानहु खोये । भांति भांति फन्दा अरुझोये ॥  
 रोगी वैद्य दोनों एक ठाऊँ । औषध कही कल्पनाके गाऊँ ॥  
 जेहि कारण नर साई जो देई । सो सौदा जँचि काहे न लेई ॥  
 ठग भरमावे बहु विधि लूटे । यम धन्धासैं कबहुँ न छूटे ॥  
 मोटि अविद्या छुडावन लागे । झीनी महा अविद्या पागे ॥  
 झनी मोटे दोउ कष्ट सेहूपा । कारण नास्ति परे त्यहि कूपा ॥

पूरा धनी पूरा सो सौदा । परखत मेंटे कालको फन्दा ॥  
सन्धि लखावहि कारण रोगू । मेंटहिं सब विधि सन्धिक सोगू ॥  
नहिं सन्देह न यमके त्रासा । सदा सुखारी परख विलासा ॥  
धन्य सो बूझि समुझि पग धरई । अँधरन भटकि भटकि भवपरई ॥

साखी-बलिहारी तेहि पुरुषकी, पर चित परखनहार ॥  
साई दीन्हों खांडको, खारी बूझ गवाँर ॥  
करु बन्दगी विवेककी, भेष धरे सब कोय ॥  
सो बन्दगी बहि जानदे, जहँ शब्द विवेक न होय ॥  
मानुष देही पाइके, चूके अबकी घात ॥  
जाइ परे भवचक्रमें, सहे घनेरो लात ॥

इति । मानुष विचारसे.

इति तृतीयखण्ड समाप्त ।



पुस्तक मिलनेका ठिकाना—

|                           |                              |
|---------------------------|------------------------------|
| खेमराज श्रीकृष्णदास,      | गङ्गाविष्णु श्रीकृष्णदास,    |
| अध्यक्ष-“श्रीवेङ्कटेश्वर” | अध्यक्ष-“लक्ष्मीवेङ्कटेश्वर” |
| स्टीम-प्रेस, बम्बई.       | प्रेस, कल्याण-बम्बई.         |

## “श्रीवेङ्कटेश्वर” (स्टीम्) यन्त्रालयकी परमोपयोगी स्वच्छ, शुद्ध, और सस्ती पुस्तकें ।

यह विषय आज ४०।५० वर्षसे अधिक हुआ, भारतवर्षमें प्रसिद्ध है, कि इस छापाखानेकी छपी हुई पुस्तकें सर्वोत्तम और सुन्दर प्रतीत तथा प्रमाणित हुई हैं। सो, इस यन्त्रालयमें प्रत्येक विषयकी पुस्तकें जैसे—वैदिक, वेदान्त, पुराण, धर्मशास्त्र, न्याय, मीमांसा, छन्द, ज्योतिष, साम्प्रदायिक, काव्य, अलंकार, चम्पू, नाटक, कोष, वैद्यक तथा स्तोत्रादि संस्कृत और हिन्दीभाषाके प्रत्येक अवसर पर बिक्रीके लिये तैयार रहती हैं। शुद्धता, स्वच्छता तथा कागजकी उत्तमता और जिल्दकी बँधाई देशभरमें विख्यात है। इतनी उत्तमता होनेपर भी दाम बहुत ही सस्ते रखे गये हैं और कमीशन भी पृथक् काट दिया जाता है। ऐसी सरलता पाठकोंको मिलनी असंभव है। संस्कृत तथा हिन्दीके रासिकोंको अवश्य अपनी अपनी आवश्यकतानुसार पुस्तकोंके मँगानेमें त्रुटि न करनी चाहिये। ऐसा उत्तम, सस्ता और शुद्ध माल दूसरी जगह मिलना असम्भव है, -) भेजकर ‘सूचीपत्र’ मँगा देखो ॥

खेमराज श्रीकृष्णदास,

‘श्रीवेङ्कटेश्वर’ (स्टीम्) यन्त्रालयाध्यक्ष-मुम्बई.







